सामयिक साहित्य-माला — तेरहवाँ पुष्प : सम्पादक — श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

उल्लुओं का अखाड़ा

(हास्य और व्यंग के शब्द-चित्र)

लेखक—

श्री जयनाथ 'नलिन'

प्रकाशक—

सामयिक साहित्य-सदन,

चेम्बरलेन रोड, लाहौर।

प्रकाशक—

उमाशंकर त्रिवेदी एम० ए०

व्यवस्थापक—सामयिक साहित्य-सदन,

चेम्बरलेन रोड, लाहौर।

प्रथम संस्करण

मूल्य—सवा दो रुपये

मुद्रक:—

देवी प्रसाद शुक्ल

शुक्ला-राजपूत प्रेस, हस्पताल रोड, लाहौर

प्रकाश

'सामयिक साहित्य सदन' को श्री जयनाथ 'नलिन' की "जवानी का नशा" पुस्तक प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता प्राप्त हो रही है। हिन्दी के साहित्य-भंडार में "हास्य और व्यंग" की कमी है—और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। साहित्य तो समाज का प्रतिबिंब है। हमारे देश की जैसी दयनीय और निराशाजनक स्थिति है उसमें चित्त का स्वस्थ रहना असम्भव है। प्राणों में अविरल हाहाकार मचा रहता है। वही हाहाकार हमारे साहित्य में भी प्रकाशित हुआ करता है। 'हास्य' के अनुकूल वातावरण ही नहीं है, इसलिए इन दिनों जो लेखक 'हास्य' लिखने में समर्थ हैं, उनकी साधना की सराहना ही करना चाहिए। 'नलिन' जी का अपनी भावनाओं पर संयम प्रशंसनीय है।

हास्यरस के नाम पर हिन्दी-साहित्य में और भी कुछ चीज़ें प्रकाशित हुई हैं और उनमें अनेक सुन्दर भी हैं—लेकिन कुछ ऐसी भी हैं जिनमें शिष्टता और शालीनता का अभाव है तथा स्वाभाविकता भी नहीं है। ऐसे साहित्य को हम 'हास्य की विकृति' कह सकते हैं। इसके विपरीत नलिन जी का हास्य सुसंस्कृत है।

'नलिन' जी ने अपने आपको सदा 'प्रचार' से अलग रखने का प्रयत्न किया है— यही कारण है कि जहाँ दूसरे कहीं नीचे दर्जे के लेखक हास्य-रसाचार्य बन गए हैं, वहाँ इनका नाम पूर्ण प्रकाश में नहीं आया। हमारा समालोचकवर्ग भी प्राय: उन्हीं की रचनाओं पर प्रकाश डालता है जो अपने लिए प्रचार कराने में दत्त-चित्त हैं। "नलिन" जैसे "वनफूल" को संसार के सामने लाने की ओर उसका ध्यान नहीं है। 'नलिन' जी की हास्यरस की प्रथम पुस्तक "नवाबी सनक" ने ही पाठकों को आकर्षित कर लिया था। यह दूसरी पुस्तक "जवानी का नशा" तो निश्चय-पूर्वक उससे भी अधिक उत्कृष्ट, मनोरञ्जक और चोट करने वाली है।

नलिन जी न केवल हास्य-लेखक हैं, बल्कि एक सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली कलाकार है— कविता, कहानी, एकांकी नाटक और निबन्ध सभी क्षेत्रों में समान रूप से उन्होंने लिखा है। उनका हास्य भी एक उद्देश्य को लिए हुए होता है। मनुष्य और समाज की न्यूनताओं और दुर्बलताओं को प्रकट करना उनके हास्य का उद्देश्य है— केवल मनोरञ्जन नहीं। इसी प्रकार के साहित्य की आज हिंदी में आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि "जवानी का नशा" का हिंदी के पाठकों और विद्वानों में अच्छा स्वागत होगा।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

सूची

जवानी का नशा

हवाई हमला

ब्रह्मा समझता है कि उसने मनुष्य जैसा दुपाया जन्तु बना कर बड़ी भारी अक्ल का कार्य किया है। इससे भी ज्यादा अभिमान और गुमान तो उसको इस बात पर है कि मनुष्य की खोपड़ी में उसने अक्ल नामक चीज भी रख दी है। ब्रह्माजी इन्सान को अक्ल देकर बड़े इतराये; लेकिन उनको मालूम न था कि अक्ल की बीमारी मनुष्य को चैन से न बैठने देगी। यह अक्ल नामक चीज उसकी औंधी खोपड़ी को परेशान करती रहेगी; और इन्सान पागलों की तरह बौखलाया फिरेगा—अक्ल उसको कहीं टिकने न देगी।

यही हुआ। यह अक्ल का पागलपन ही तो है कि मनुष्य कुछ न कुछ करने को सदा रस्से तुड़ाया करता है। खोपड़ी की खाज मिटाने के लिए ही वह नित्य नये-नये काम किया करता है। कितने ही आविष्कार किये गये, और इसी अक्ल की कुलाचें लगाने, सिर की सनक प्रकट करने और दिमाग की दौड़ दिखाने के लिए ही दुनिया में नयी-नयी चीजों की रचना हो रही है। और तो और ब्रह्मा से अक्ल लेकर मनुष्य उसकी ही खबर लेने पर तुला हुआ है।

मनुष्य की इसी चुलबुली अक्ल ने ही आकाश में गड़गड़ाते हुए उड़न-खटोले बना डाले हैं। आजकल लड़ाई के ज़माने में तो इनसे बाबा ब्रह्मा की ही खेती में आग लगाई जा रही है। क्या निराली बात है, न लड़ाई का कोई क़ायदा न क़ानून, आया जनून और गड़गड़ाते हुए कुछ जहाज़ आये और धड़ाम-धड़ाम बम-वर्षा करके चलते बने। रह गये शहरवाले टापते के टापते! और अपने दुर्भाग्य की लम्बाई नापते।

मुकद्दमपुर नामक शहर भी दुश्मनों की आँख का काँटा बना हुआ था, या इस पर दुश्मन की ललचाई हुई नज़र थी। यह भी हो सकता है कि उसकी इस नगर के लिए लार भी टपक रही हो। यह नगर समुद्र के किनारे होने से बड़े खतरे में था। बम-वर्षा का इस पर खतरा बढ़ता ही जाता था। सरकार इतनी चुस्त थी कि उसका सुस्त से सुस्त काम भी दुरुस्त और तन्दुरुस्त था। नगर की हर प्रकार रक्षा करना और हमेशा दुश्मन को दुम दबा कर भगाने के मनसूबे ही नहीं बाँधना, बल्कि पक्के इरादे करके सदा कमर कसे तैयार रहना सरकार का परम कर्तव्य था। नगर पर दुश्मन का हवाई हमला होगा, यह दुश्मन ने कई बार खबर दी। और दुश्मन के रेडियो पर यक़ीन करके ग़लती करने की नासमझी न करने का प्रण किये हुए भी सरकार ने नगर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया। नागरिकों को हद्द तथा रोबदाब के साथ जीवन की चक्की चलाने का हुक्म दे दिया गया।

× × × ×

शहर में चार तहखाने बनाए गए, शहर में रहने वालों को तहखानों में जाने और अपनी रक्षा करने की शिक्षा भी दी

गई। 'करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान' फिर ये तो समझदार शहरी आदमी ठहरे, दो चार बार अभ्यास करने पर अपनी रक्षा करने में ट्रेंड हो गए। कुछ दिन तो बड़े चैन की छनी; पर एक दिन अचानक गड़गड़ाहट की आवाज़ सुनाई दी। लोगों के कान खड़े हुए। सब भौंचक्के-से हो गए! साथ ही इसी समय आसमान में तीन-चार चलते चिराग़ से उड़ते हुए दिखाई दिए। शहर भर में आतंक छा गया।

हवाई हमले का ख़तरा खोपड़ी के दालान में आसन जमाये ही था, चारों तरफ़ शोर होने लगा—"दुश्मन आ गया! दुश्मन आ गया! हवाई हमला!"

सरकार तो अपने काम में पहले ही चुस्त थी, फ़ौरन ख़तरे का घण्टा बजा और एकदम रोशनी गुल। सारे शहर में ब्लैक-आउट। अँधेरा घुप्प। बिलकुल ख़ामोशी। चूल्हों में पानी डाल दिया गया, अँगीठी एकदम बुझा दी गई, सिगरेट मसल डाली गई, चिलमें औंट दी गई—"दुश्मन आया, दुश्मन! हवाई हमला! बचो, भागो! वह बम गिरा! बम गिरा बम!" कोई आदमी घबरा कर चिल्लाया और फ़ौरन किसी ने कहने वाले का मुँह मसोस दिया, "अबे चुप!"

सब लोग अपने अपने घरों को छोड़ कर तहख़ानों की ओर भागने लगे। सब को अपनी अपनी जान की पड़ गई। भीड़ की भीड़ अँधेरे में टटोलने लगी।

"तहख़ानों में चलो! जल्दी करो! वरना गए! आज मरे! बम गिरा! भगवान तू ही रक्षक है! तेरा ही सहारा है!"

इसी प्रकार की कितनी ही आवाज़ें धीरे-धीरे कितने ही मुखों

से निकल रही थीं। कितने ही लोग राम-राम जपने लगे, कितनों ही ने देवी मैया की मानता मानी, बहुत से भक्तों ने सत्यनारायण की कथा बोली, अनेकों ने हनुमान जी को रोट-लँगोट चढ़ाने का निश्चय किया।

एक तरफ़ से शोर मचा और भीड़ की भीड़ उसी ओर भाग चली। कुछ आदमी पीछे से चिल्लाए, "चलो, चलो! इसी तरफ़, इसी तरफ़! इधर ही तहखाना है।"

"हाँ, हाँ, इसी ओर" कह कर पीछे की भीड़ ने रेला लगाया और अगली भीड़ को सैकड़ों मुक्के और धक्के पड़ गये।

"अरे, कमबख्तो, हमारी कमरें क्यों तोड़ डालते हो।" अगली भीड़ में से किसी ने कहा।

"चला चल! देखना, खुद भी मरेगा और हमें भी मरवायेगा।" पिछली भीड़ में से कोई आदमी अगले आदमी को धक्का देते हुए बोला।

"अरे जल्दी आगे बढ़ो।" कोई गिड़गिड़ाया।

"सिर पर जहाज़ उड़ रहे हैं।" कोई बोला।

"अरे, मौत डोल रही है, मौत!" कोई तीसरा बोला।

"दरवाज़ा! दरवाज़ा!" इतने में ही एक तरफ़ से आवाज़ आई और परड़-परड़ धमाधम करती हुई सारी भीड़ उसी तरफ़ दौड़ने लगी।

धम्म-पट्ट!—"हाय! दीवार से सिर टकरा गया।" कई आदमी चिल्ला पड़े।

"इधर तहखाना नहीं है।" कोई बोला।

"याद भी तो नहीं रहा कि तहखाना किधर है।" दूसरे आदमी ने समर्थन किया।

"सिपाही भी मर गए क्या आज सारे। कमबख्त चालान करने को तो हमेशा रहते हैं, आज लापता हैं।" कोई तेज़ मिजाज़ आदमी बोला।

"इधर चले आओ। तहखाना इधर ही मालूम होता है।" फिर एक आवाज़ आई और उसे सुनते ही परड़-परड़ करती हुई भीड़ उधर ही दौड़ी।

"अब जल्दी चलो, सिर पर मौत मँडरा रही है। बम बरसने ही वाले हैं।"

"भगवान बचाओ, तुम्हारी दुहाई है!"

"या अल्लाह, दुश्मनों के बमों में कीड़े पड़ें।"

"खुदा करे इनके जहाज़ सड़ जायँ।"

"अरे आगे भी बढ़ोगे या बकते ही रहोगे।" भीड़ में से किसी ने अगली भीड़ को धकेलते हुए कहा।

खट्ट-पट्ट धम्म! खट्ट-पट्ट धम्म!—बड़े जोर से आवाज़ हुई!

"बम! बम! बचो भागो! दुश्मन! दुश्मन!" किसी ने कहा और फिर भगदड़ मची! कितने ही आदमी एक दूसरे के ऊपर गिरे।

"कौन अन्धा है कि मेरी कमर ही तोड़ दी।"

"किसी कमबख्त ने मेरे पंजे का भुर्ता ही कर डाला।"

"ऐसी मुसीबतों में भी मर्दूद बूट पहन कर आते हैं!"

"चुप्प!" कहने वाले का किसी ने मुँह दबोच दिया।

"तू कौन है नालायक!" मुँह छुड़ाते हुए वह बोला।

"अबे चुप! मैं हूँ शहर-कोतवाल।" अँधेरे में कोतवाल साहब रौब जमाते हुए बोले।

"तो सरकार हमारी जान बचाइये। हम मरे।" कई आवाज़ें आईं।

"चले आओ सीधे।" कह कर कोतवाल आगे बढ़ गया। टटोलते हुए लोग उसके पीछे ही भागने लगे।

"कमबख़्त की कुहनी है कि फ़ौलाद का डंडा! मेरी तो पसली ही टूट गई। तेरा नाश हो कलमुँहे।"

"सावधान! सावधान!! ज़रा आगे बढ़ो और दायें मुड़ो, बस तहख़ाना है।" किसी ने पुकारा। सारी भीड़ उधर ही दौड़ पड़ी। आकाश में जलते हुए तीन-चार चिराग़-से अब भी उड़ रहे थे।

टप्प-टप्प—धम्म!—"हाय मर गया। किसी नालायक ने मोटरकार भी यहीं खड़ी कर दी है!" कोई आदमी कराह उठा।

"मेरा भी तो टख़ना टूट गया।"

"सरकारी मोटर है बे, शोर क्यों करता है?"

"तो दरवाज़ा किधर है, तहख़ाने का हजूर! हमें बचाओ। हम मरे।"

"मोटर के पीछे से चले आओ जल्दी करो।" किसी ने दरवाज़ा बताया। यह कोतवाल साहिब थे।

परड़-परड़-परड़......सारी भीड़ दौड़ी और तहख़ाने में घुसने लगी। बड़े ज़ोर की धक्का-मुक्की हुई। तहख़ाने में पुलीस तैनात थी। तुरन्त शोर बन्द कर दिया गया और शान्ति तथा व्यवस्था क़ायम हो गई।

चार-पाँच घण्टे तहख़ाने में रहने के बाद सब लोग बाहर कर दिये गये। घण्टा बजा और रोशनी हो गई। लोगों की जान में जान आई, दिल धड़कने बन्द हुए। ईश्वर को हज़ार धन्यवाद दिये

गये, देवताओं की स्तुतियाँ की गईं और हनुमान की "हूँ" बोली गई।

× × × ×

दूसरे दिन सुबह शहर में खुशियाँ मनाई गईं। पूजा-आरती की गई। नमाज़ें पढ़ी गईं और गिरजों में घण्टे बजाए गए। सब लोग एक दूसरे से कहते "कमबख्त दुश्मनों को भला क्या हाथ लगा? मरदूद अपने आप हार-झखमार कर चले गए।"

"यही समझ रखा था न कि वहाँ चलकर रोब जमायेंगे।"

"भला सरकारी अमलदारी में किसी भी रिआया का बाल बाँका हो सकता है? दुश्मन भी क्या नादान और बेवकूफ़ हैं। अपना वक्त बरबाद किया और फ़ज़ूल पेट्रोल फूँका। भला उन्हें क्या मिला?"

"अजी मूर्ख हैं मूर्ख!"

"सरकार का दिमाग कितना आला है। तभी तो दुनिया पर राज कर रही है, भाई साहिब!"

"वाह! अक्ल और दिमाग! क्या बात है!"

"कमाल की बात सोची है, घण्टी बजी और, और जा घुसे तहखाने में।

"भला! दुश्मनों से कोई पूछे, कि हम तो आध सेर अन्न खाते हैं, बिल में घुसे हुए चूहे का भी बिल्ली तक कुछ नहीं बिगाड़ सकती। तुम हो किस हवा में।"

इसी प्रकार जनता शत्रु की मूर्खता की आलोचना कर रही थी।

आज समाचार-पत्रों की खूब बिक्री थी। हाकर लोग बड़े ज़ोर से शोर मचा मचा कर अखबार बेच रहे थे। कोई कुछ हेडलाइन चिल्लाता, तो कोई कुछ।

"नगर पर हवाई हमले का खतरा।"

"नगर पर बम-वर्षा का प्रयत्न, दुश्मनों को मुँह की खानी पड़ी।

"सरकारी इन्तज़ाम का कमाल।"

"दुश्मन पूछ दबा कर भाग गया।"

× × × ×

इस हवाई हमले के बारे में सरकारी "बुलेटिन" प्रकाशित हुआ। उसमें लिखा था कि ठीक रात के दस बज कर उनचास मिनट और पौने ग्यारह सेकिण्ड पर भयङ्कर गड़गड़ाहट की आवाज़ हुई और आसमान में उड़ते हुए दुश्मन के चार हवाई जहाज़ देखे गए। फौरन ही शहर की रोशनी गुल कर दी गई और जनता की रक्षा के लिए तहखाने खोल दिए गए। सभी सरकारी अफ़सर, पुलिस और जुडीशल तक सरकार के मददगार साबित हुए। पुलिस ने शहर वालों को तहखाने तक पहुँचाया और उनकी जान माल की रक्षा करने में तारीफ़ का काम किया। जनता ने भी बहुत दृढ़ता और मज़बूत चरित्र का परिचय दिया। रक्षा-विभाग ने जनता को अपनी रक्षा करने और अपनी ज़िम्मेदारी समझने की प्रशंसनीय ट्रेनिङ्ग दी है। दुश्मन के जहाज़ लगातार चार घण्टे तक आसमान में मँडराते रहे। लेकिन ब्लैक आउट इतना सफल था कि उसे नगर का पता ही न लगा। आख़िर उनको वापिस लौट जाना पड़ा। इस विषय में विस्तृत रिपोर्ट की जाँच करके प्रकाशित की जायगी।

असेम्बली में इस मामले में सवाल भी किए गए, और सरकार की ओर से जाँच-कमेटी भी बैठाई गई। कमेटी में रक्षा-विभाग का एक ऊँचा अफ़सर, केन्द्रीय सरकार का गृह-सदस्य और न

मेयर तथा अन्य कई अफ़सर सम्मिलित थे। कमेटी के प्रत्येक सदस्य ने हवाई हमले की पूरी-पूरी और सच्ची से सच्ची रिपोर्ट प्राप्त करने में सर्दी-जुकाम की भी परवा न की और रात दिन एक कर दिया। उसकी रिपोर्ट का सारांश समाचार-पत्रों में इस प्रकार प्रकाशित हुआ—बहुतेरी खोज-खबर और सिर-तोड़ कोशिशों के बाद हमें मालूम हुआ कि उस दिन शहर में एक बड़ी बरात आई थी। उसमें विवाह की आतिशबाज़ी के साथ चार गुब्बारे भी उड़ाये गए थे। ये ही आसमान में उड़ रहे थे। शहर वालों ने इनको हवाई जहाज़ समझ लिया। उस दिन तूफ़ान भी उठा मालूम होता था। गड़गड़ाहट भी हुई थी। ऐसे वक्त पर सरकार का फ़र्ज़ था कि वह तहख़ाने खोल दे और शहर वालों के जान माल की हिफ़ाज़त करे। इस सिलसिले में सरकार ने तारीफ़ का काम किया और उसने दुनिया के सामने कर्तव्य की मिसाल रखी है।

मनीआर्डर के रुपये

जिस वस्तु को हम बड़ी लापरवाही और बेदर्दी से व्यय करते हैं, कभी-कभी हम उसी के लिए आतुर हो उठते हैं। और फिर रुपया ?—मनुष्य की तो चलती ही क्या है, देवता भी इसकी माया-ममता में बुरी तरह फँसे हैं। विष्णु 'लक्ष्मी' के सेवक हैं ही। उसकी पुतलियों के संकेत पर नाचते हैं। फिर हम मानव उस लक्ष्मी के प्रसाद—चाँदी के गोल-गोल टुकड़ों—के लिए इतने पागल क्यों न हों।

समय का फेर, अपने राम की जेबें बिलकुल खाली हो गयीं। एक मित्र के पास घर से चलती बार ५ रुपये छोड़ आया था। सोचा, इस समय काम आ जायँगे, नहीं तो वे भी पेट के पाताल में विलीन हो जाते। तीन पैसे तो लगते ही हैं, तुरन्त एक कार्ड डाल दिया, जितनी जल्दी हो सके पाँच रुपये भेज दो। वहाँ से उत्तर भी ठीक ही आया—जल्दी भेजे जाते हैं, दो तीन दिन में ही मिल जायँगे।

दो-तीन दिन तो जी कड़ा करके निकाल दिए। मनी-आर्डर आने का समय होता तो पोस्टमैन की राह देखने लगता। सच, यदि आप बुरा न मानें तो आपके सिर की कसम खा लूँ।—मैं इस बेकली और उत्कण्ठा से पोस्ट-मैन की राह देखता, जिस प्रकार अफ़ीमची वक्त हो जाने पर अफ़ीम लाने भेजे हुए अपने खिलाड़ी लड़के की राह देखता है। इतना ही क्यों, इसी प्रकार मैं उस कमबख़्त डाकिये की राह अपने एकांत कमरे में देखता, जिस प्रकार पागल प्रेमी मिलन-भवन में लजीली प्रेमिका की बाट जोहता है, धड़कते हृदय, अपलक नयन, काँपते अंग, पुलकते मन से।

एक-दो दिन और निकल गये। धैर्य जाता रहा और पोस्ट-मास्टर पर बड़ा क्रोध आया—यह भी शैतान शरारत करता है, इसी ने रोक रखे होंगे। ऐसी भी क्या हँसी। अभी इसकी रिपोर्ट करता हूँ, सब मालूम हो जायगा महाशय को। मैं तो समझता हूँ, बाल-बच्चेदार आदमी है। मियाँ टँगे-टँगे फिरेंगे एक ही शिकायत में। समझते क्या हैं। कांग्रेस सरकार है आजकल !

फिर सोचा चलो—माननीय पन्तजी से मिल आऊँ और उनसे कह दूँ कि पोस्ट-मास्टर को आदेश करें कि रुपये तुरन्त भेजे। पर लखनऊ जाने के लिए भी तो रुपये चाहिए। ओह ! यह बात ठीक नहीं। हाँ, एक बात और हो सकती है—पन्तजी को चिट्ठी डाल दूँ और सारी बात उनसे कह दूँ। पत्र डालने के लिए भी पैसे नहीं थे, पैसे न सही, बैरङ्ग डालूँगा। ५००) रुपये पाते हैं। अगर देश के एक युवक के लिए दो आने खर्च कर देंगे तो क्या बिगड़ जायगा। इस विषय में अपने एक मित्र से सलाह की। "अभी नहीं, पहले एक पत्र अपने मित्र को और डाल कर जान लो, रुपये भेजे कि नहीं।" उसने कहा।

"अजी यह भी भला हो सकता है कि मित्र रुपये न भेजें।" मैंने उसकी बात पर सन्देह किया।

"फिर भी हानि ही क्या है।" उसने मुझे दूसरा पत्र लिखने पर विवश किया। मैंने अपने मित्र को बड़े ताव में आकर कार्ड डाला। उनका उत्तर लौटती डाक से आगया—अभी रुपये भेजते हैं, तुम्हें दो चार दिन ही में मिल जायँगे।

दो-तीन दिन तो मैंने बीत जाने दिए, जिससे शीघ्र रुपये आने वाला दिन तो आवे। घड़ी में बारह बजे कि मैं खिड़की की ओर मुँह करके बैठ गया। डाकिया आता दिखाई दिया। दिल बल्लियों उछलने लगा। मन में न जाने कैसी-कैसी भावनाएँ दौड़ गईं। वह आकर सामने ही एक बूढ़े के पास बैठ गया और धीरे-धीरे कुछ बातें करने लगा। मेरी तरफ़ देखता तथा बार-बार अपने फ़ार्म टटोलता। उस बूढ़े ने मेरी ओर संकेत किया और डाकिया उठकर मेरे कमरे की ओर आया। उसको आता देख न जाने मैं क्या क्या सोच गया—आज उस होटल वाले के नाक पर मारूँगा ५ रुपये अपने को समझता क्या है! चार-पाँच रुपये बड़ी कठिनता से होंगे, बहुत हुए तो छः-साढ़े छः रुपये। हैं तो पाँच के लगभग ही। ऊँह! वह तो पन्द्रह दिन तक मुँह न खोलेगा। उसे मालूम हो गया है कि हम कवि भी हैं और कहानी-लेखक भी। डरता है वह तो, कहीं कुछ लिख न दें। हाँ, याद आया कि सिनेमा चला जाय। देखा, उस दिन शबनम कैसी अकड़ती आ रही थी। किस अभिमान के साथ कहा था—चलिये इसे देख आवें। शान से सिनेमा चलेंगे, जो उसे भी पता चल जाय, यह भी कोई हैं। नहीं, सिनेमा नहीं, होटल में चलकर चाय पी जाय। कोच पर

फस-से जा पड़ें। और पड़े-पड़े आवाज़ लगे, 'ब्याय! ओ ब्याय! फ़ौरन दो डबल सेट टी लाओ। हाँ, दो-दो बटर्ड टोस्ट भी।' और शबनम भी तो साथ होगी! यदि ज़रा भी देर हो जाय तो तुरन्त डाट पिलाई जाय--'बदमाश बैरा! साहब इतनी देर नहीं बैठ सकता। इतनी देर! हुँ!!' कह कर फ़र्श पर पैर पटकूँ! अब मैनेजर भी सटपटाने लगे। बैरा की तो हवा ही बिगड़ जाय। तब शबनम पर कितना रोब जमे। वाह!

मैं विचार-तरङ्गों में डूब रहा था, पोस्टमैन कमरे के दरवाज़े पर आ गया। मैंने हस्ताक्षर करने के लिए तुरन्त पैन तैयार किया।

"हुँ···हुँ···हुँ···हुँ···हुँ! बाबू जी माफ़ करना।" कह कर पोस्ट-मैन अन्दर आ गया। मैंने उसे बैठने के लिये मूढ़े की ओर इशारा किया। वह बैठ गया और उसने अपने फ़ार्म निकाले।

"यह गेंदी लाल कौन है बाबू जी?" उसने चश्मे से आँखें ऊपर चमकाते हुए पूछा।

"चुङ्गी के दाएँ, नीम के पेड़ के सामने रहता है।" मैंने उसे बता दिया।

"हुँ···हुँ···हुँ···हुँ और यह खचेरा मल?" उसने दूसरे फ़ार्म निगाह डाली।

"यह मुकुन्द मन्दिर है न, बस उसी के पीछे। दर्ज़ी का काम ······।" मैंने कहा।

इसी प्रकार उसने पाँच-छः पते पूछे। और मैं इसी आशा में कि मेरा फ़ार्म अब निकलेगा, उसे पते बताता रहा। फिर उसने खोज कर एक दबा हुआ फ़ार्म निकाला। मैंने उतावलेपन से कहा, "ठीक ठीक यही है, बड़ी देर लगायी।"

"बड़ा नीचे दबा हुआ था। तो यह बाबू अय—।"

"हाँ-हाँ यही···।" मैने कहा। समझा मेरा नाम ले रहा है।

"बाबू जयकिशनप्रसाद गौड़ कहाँ चले गये?" उसने फिर पूछा।

"चले गये भाड़ में।" मैने गर्म होकर कहा। वह ताड़ गया। सिटपिटा कर उठा।

"आपको बड़ा कष्ट हुआ। धन्यवाद। माफ़ कीजिये," कहकर चलता बना और मैं उसकी पीठ को आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

क्रोध तो बड़ा आया कि नालायक को अभी बरख़ास्त करवा दूँ। यही सोच कर कि इसके बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे, आख़िर चुप हो रहा।

शास्त्रों में क्षमा-दया को बड़ा महत्त्व दिया है, इसीलिये उस शैतान बूढ़े डाकिये को छोड़ दिया। नहीं तो सच, क्रोध बड़ा आया था। उस दिन से उस खुर्राट से कुछ घृणा-सी हो गयी।

× × × ×

दो-तीन दिन बीते कि उस पुराने खुर्राट की बदली किसी और हल्के में हो गयी। उसके स्थान पर आया एक हँसमुख नवयुवक पोस्ट-मैन। वह आता और इतने सम्मान के साथ मुस्करा कर नमस्ते कहता कि वह मुझे भलामानस जँचने लगा। विश्वास हो गया कि यह काम का आदमी है। इससे काम निकलेगा।

एक दिन वह पास से निकला और उसने मीठी हँसी हँसकर नमस्ते की। मैंने उसे रोक लिया।

"कहो भाई अच्छे हो।"

"आपकी दया है, बाबू जी।" उसने मुस्करा कर उत्तर दिया।

"हमारा मनी-आर्डर कब आवेगा?" मैंने पूछा।

"बस आने वाला ही है सरकार।" कह कर वह मुस्कराता हुआ चला गया और उसके प्रति मेरे हृदय में और भी अधिक प्रेम हो गया। जब डाकखाने का ही एक अधिकारी कह रहा है तो सन्देह कैसा। अब मैं प्रति दिन १२ बजे खिड़की के पास बैठता और मनीआर्डर की राह देखता।

एक दिन मैं बैठा उसकी राह देख रहा था कि वह आता दिखाई दिया। सामने वालों से कुछ पूछा और लम्बे-लम्बे पग रखते हुए मेरी ओर बढ़ा। आते ही उसने पूछा, "आप ही हैं न जयकुमार बाबू ?"

"हाँ—हाँ, बिना संकोच चले आइये।" मैंने तुरन्त उत्तर दिया। वह दरवाज़े से आने लगा। आने में दो मिनट ही लगे होंगे कि उसके प्रति कितने ही अच्छे-अच्छे विचार मेरे मन में दौड़ गये। बेचारा कितना भला है। दो-तीन दिन में ही ले आया। एक वह खूसट था। कमबख्त ने इतना तंग किया। वह होता तो अभी कुछ न लाता। यानी कितनी 'अपटुडेट इन्फर्मेशन' है।

खट-खट-खट वह मेरे कमरे में दाखिल हुआ। तब मेरा ध्यान टूटा। मैं झट उठा और कुर्सी पर बैठने का संकेत करके अपना पैन ठीक करने लगा।

"बाबू जी बड़ा परेशान होना पड़ा।" वह कुर्सी खींचता हुआ बोला और बैठ गया।

"अरे अहा"'हा हा...हा यहीं क्यों न चले आये।" मैंने रुपये प्राप्त करने की प्रसन्नता में हँस कर कहा।

"पता ही ग़लत लिखा है, बाबूजी।" कह कर वह अपना थैला टटोलने लगा।

"तुम्हें बड़ी तकलीफ़ हुई। ख़ैर, कितने का है।" मैंने उछलते हुए हृदय से पूछा।

"ज़्यादा का नहीं, सरकार।" वह फिर अपने थैले को टटोलने लगा।

"फिर भी तो।" मैंने उसकी तरफ़ देख कर पूछा और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

"सिर्फ़ एक रुपया छः आने का है।" कहकर उसने अपने थैले से बहुत-से पार्सल निकाले।

"एक रुपया छः आने का।" मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"जी हाँ।" कह कर उसने निकाले हुए पार्सलों को टटोला।

"अरे भाई, पाँच रुपये का होना चाहिये।" मैंने उससे अपने कहे हुए पर निश्चयपूर्वक उत्तर देने का संकेत किया।

"नहीं सरकार, पाँच रुपये का नहीं है।" कह कर मुस्काते हुये उसने एक पार्सल मेरे हाथ में पकड़ा दिया।

"यह क्या।" बिना हाथ में लिये ही मैंने आश्चर्य से पूछा और फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखने लगा।

"एक रुपये छः आने का अनपेड़ पार्सल" कह कर उसने पार्सल मेरे पास ही रख दिया।

मैं भौंचक्का-सा रह गया, मुँह से एक भी शब्द न निकला। मनीआर्डर फ़ार्म पर हस्ताक्षर करने की कलम हाथ में ही रह गयी सोचा था, मनीआर्डर होगा और है 'अनपेड पार्सल।'

"तो लीजिये न सरकार।" उसने उसे मेरे हाथ में दे दिया।

"हूँ। भाई, ताली मेरे मित्र के पास है कल न आओगे? मैंने पार्सल उसे लौटा दिया।

"अच्छी बात है, कल ही सही," कह कर वह उठ खड़ा हुआ और चलता बना।

× × × ×

बहुत सोचा-विचारा पर समझ में न आया कि मनीआर्डर क्यों नहीं आता। मित्र ऐसा तो है नहीं कि न भेजे। सुनते हैं, पोस्ट-आफिस वाले मनी-आर्डर रोक लिया करते हैं और इसी प्रकार अपनी तनख़ाह वसूल कर लिया करते हैं। ठीक भी है। भला जिसके हाथ में पैसा हो, वह अपने पैसे वसूल क्यों न करे। पर इन भलेमानसों को यह तो सोचना चाहिए कि इनकी इस हरकत से किसी की कितनी हानि होती है। भले ही मैं व्यापारी नहीं, पर सोचना तो पड़ता ही है साहब। मैं सच कहता हूं कि इस उतार-चढ़ाव के समय ५ रुपये के १५ रुपये हो सकते थे।

जी में कई बार फिर आया कि मित्र को चिट्ठी लिख दूँ। पर ऋण लेकर लिखने में कौन बुद्धिमानी है। कितनी ही बार विचार किया पर न लिखा। हाँ, एक बात समझ में आई कि पी० एम० जी० को लिखूं—'महोदय यह तो निराला नियम है कि किसी ग़रीब के मनीआर्डर से किसी चालाक डाक मुन्शी ने अपनी तनख़ाह ले ली है। कृपा करके मामले की जाँच कीजिये।'

दृढ़ निश्चय कर लिया कि पोस्ट-मास्टर-जनरल को अवश्य लिखूंगा। यह भी अच्छी दिल्लगी है। जिसके रुपये, वह तड़पता रहे और मुफ़्ख़ोर मज़ा उड़ाएँ।

इसी सोच-विचार में होटल की ओर चला। होटल के दरवाज़े में पैर रक्खा ही था कि मैनेजर के दर्शन हो गये।

सच कहता हूँ, इन महोदय के दर्शन तेली से भी अधिक अशुभ होते हैं। जिस दिन देख लूँ, रोटी तो मिल ही जाती थी, पर पेट में

धरना लगा बैठतीं। अब बच कैसे सकता था।

"हैं...है...हे...हं...हुं...हैं नमस्ते।" मैंने मैनेजर को नमस्ते की।

"अच्छा आप हैं, नमस्ते।" वह अखबार से सिर उठा कर बोला। मैं आगे बढ़ने लगा, पर जाने दे तब तो, उसने मुझे रोक ही लिया। कहा, "इधर आइये मिस्टर, कहो, क्या खबर है?

मैं सनक-सी में लौट पड़ा। यह खूसंट आज अवश्य ही माँगेगा और यहाँ अभी कुछ भी आया नहीं। मैंने पास आकर पूछा, "कहिये क्या आज्ञा है?"

"महाराज वगैरह की कोई शिकायत? खाना ठीक मिल रहा है न?---आज तो बड़े सज्जन बन रहे थे।"

"आप की कृपा है। सब ठीक है।" मैं बात समाप्त करना चाहता था।

"बैठिये, कोई जल्दी तो नहीं?" हमने बटेर-गार्डन में ज़मीन ले ली है।" उन्होंने अपनी कथा छेड़ी और मैं अपनी कुर्सी सरका कर बैठ गया।

"२-३ दिन में रजिस्ट्री हो जायगी।"

"अच्छा मौका है, कोठी बनवा लीजिये।" मैंने उसकी सम्पत्ति को बढ़ाना आरम्भ किया।

"अजी, कोठी की बात न करो। रुपयों का बड़ा तोड़ा है।" वह अपनी स्तुति करता हुआ बोला।

जी में तो आया कह दूँ, मरे क्यों जाते हो, दो-चार दिन में रुपये आ जायेंगे, पर मैं कुछ न बोला।

बात समाप्त हो गई और मैं भोजन करके कमरे में वापिस आ गया। उफ! इतनी देर, १२ बजे थे। जल्दी जल्दी कपड़े उतारे

ओर वही डाकिया आता दिखाई दिया। जी एक दम कुढ़ गया। उसकी सूरत भी देखने की इच्छा न थी। दुष्ट हँसता हुआ आता है और 'अनपेड पार्सल' दे जाता है।

वह मुस्कराता हुआ कमरे में आ गया। "बाबू जी नमस्ते," कह कर सामने आ खड़ा हुआ देखते ही मुझे जनून चढ़ गया।

"कहिए महाशय, क्या बला लाये हो?"

"आज तो बहुत काफ़ी है सरकार।" वह कहता हुआ बैठ गया।

"लौटा दो, चाहे जितने का हो। कौन न जाने क्या क्या बलायें भेजते रहते हैं।" मैं चिढ़ता-सा कहता हुआ खड़ा रहा।

"चाहे तो लौटा देना, पहले देख तो लीजिये।" वह ठीक उसी प्रकार अपना थैला टटोलने लगा, जिस प्रकार पार्सल वाले दिन टटोला था।

"न भाई, मुझको न चाहिए यह सौगात।" मैं नाक सिकोड़ कर कहने लगा।

"देख तो लीजिये, किसने भेजा है। आज तो पूरे पाँच रुपये का है।" उसने फ़ार्म निकाला।

"अच्छा!" कहते ही शरीर में नया रक्त दौड़ने लगा। उसने पाँच रुपये मेरे सामने रख दिये। मैंने तुरन्त हस्ताक्षर किये। वह चला गया, पाँचों रुपये उठाये, जेब में डाले और होटल की ओर चला। पैर हवा से बातें कर रहे थे। बात की बात में वहाँ आ पहुँचा। सीना उभारते हुए खट-खट करके अन्दर मैनेजर के कमरे में पहुँच गया और मैंने बिना बोले ५) निकाल कर मेज़ पर रख दिये।

"हूँ...हूँ...हूँ...हूँ...हूँ—इतनी जल्दी ही कहाँ था?" रुपये उठाकर वह देखने लगा।

"टन्न—टन्न—! टन—टन—टन !" रुपयों ने आवाज़ की और उसने तुरन्त तीन रुपये उठा कर मेरे हाथ में दे दिये।

"ज़रा खराब हैं।" कोई बात नहीं, फिर आ जायेंगे।" मैनेजर बोला।

"ख़राब !" मैंने आँखें फाड़ कर देखा। करता क्या, रुपये उठा कर जेब में रखे। मन में उस दुष्ट डाकिये को बड़ा कोसा। सामने होता तो मुँह नोच लेता। कमबख्त हँस कर दग़ा कर गया। सिर चकराने लगा और मैंने बिजली का पंखा खोलते हुए मैनेजर से पानी मँगाने की प्रार्थना की। बिजली का पंखा साँय-साँय चल रहा था। जेब में तीन रुपये पड़े थे और मेरे होठों पर बरफ़ के पानी का गिलास अड़ा हुआ था।

डिबेटर

'संसार में कोई भी कार्य असम्भव नहीं' नेपोलियन के ये शब्द मेरे हृदय में बैठ गये और मैंने देखा कि संसार में जितने भी महा-पुरुष हैं, सभी बालकपन में भोंदू टाइप के मनुष्य थे, पर बाद में किसी घटना की ऐसी चोट लगी कि वे बड़प्पन की ओर उछल पड़े। हमारे स्कूल का पारितोषिकोत्सव हुआ और मुझसे भी एक अयोग्य लड़का, सीना तानता हुआ उठा, कलक्टर साहब से हाथ मिला कर एक सोने का तगमा ले आया। वह गोल्ड-मैडिल उसको डिबेट में प्रथम आने का पुरस्कार था।

"ऊँह! यह ही कौन बड़ा बोलने वाला है, मैं इससे भी अच्छा डिबेटर बन सकता हूँ।" मेरे मन में विचार आया और मैंने एक श्रेष्ठ डिबेटर बनने का निश्चय कर लिया।

डिबेट के विषय में पुस्तकें भी पढ़ डालीं। 'व्याख्याता बनने का पहला तरीका यह है कि बोलते वक्त लाज-शरम न करनी चाहिए। श्रोताओं को मूर्ख समझ कर अपनी बात कही जानी चाहिए।'—यह उस पुस्तक में लिखा था। 'प्राइज़-डिबेट' होने से पहले मैंने यह ठीक समझा कि साधारण डिबेट में बोलना चाहिए

और बोलने वालों में मैंने अपना नाम भी दे दिया।

दिन निश्चित कीजिये और वह सामने खड़ा है। डिबेट का दिन भी आ गया! विषय था—'देशोद्धार के लिए सम्पादक की नहीं, अध्यापक की आवश्यकता है।' समाचार-पत्रों में पढ़ते आये हैं कि विरोधी दल सरकार की नाक में दम कर देता है। मैंने भी अपना नाम विरोधियों में लिखा दिया, अर्थात् मुझे भी यह प्रमाणित करना था कि 'देशोद्धार के लिए सम्पादक की आवश्यकता है, अध्यापक की नहीं।' विरोधी दल में इसलिए भी नाम लिखाया कि अगर कहीं तकदीर धक्का खा जाय और मैं केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य बन जाऊँ, तो विरोधी दल का लीडर बनकर सरकार की नाक में दम कर दूँगा। अभ्यास तो अभी से करना चाहिए।

और भी एक बात सोची, "हो सकता है कि मैं सम्पादक ही बन जाऊँ। अभी से अपनी शक्ति पहचाननी चाहिये। महापुरुषों के जीवन एक घटना होती है, सम्भव है मेरे जीवन में भी यह घटना हो और मेरे भविष्य का संकेत दे रही हो।"—यही सब सोचा गया शनिश्चर देवता का दिन, एक बजे छुट्टी हो गयी और सारे विद्यार्थी हाल में एकत्र हुए। आज है डिबेट, जिसमें मुझे अपनी वाक्-चातुरी और तर्क-शक्ति का प्रदर्शन करना है। हेडमास्टर सभापति बन कर आ बैठे और लड़कों ने 'तड़-तड़' तालियाँ बजाईं। राम जाने क्यों, मेरे दिल पर हथौड़े से पड़ने लगे। मेरी परेशानी देखकर एक सहपाठी ने कहा—

"खूब! आज तो आप भी......!

"हाँ भाई, नाम दे दिया है। न बोलो तो भी लोग परेशान

करते हैं। कुछ बक-झक देंगे और क्या!" मैंने बनावटी हँसी हँस कर उत्तर दिया।

"बक-झक देंगे? अरे मियाँ, यों कहो कि आज ग़ज़ब ढा देंगे! आज तक ऐसी न कभी हुई और न कभी होगी।" उसने कहा।

"यार क्यों बनाते हो।" मैं अपने को सँभालते हुए बोला।

डिबेट आरम्भ हो गयी। एक लड़का आया और बकने लगा "देश का उद्धार अध्यापक ही कर सकते हैं।"

मैंने अपने मित्रों को सुनाते हुए कहा—"अरे कुछ मालूम भी है दुनियाँ की रफ़्तार-भोंदू।"

"कम्बख़्त हिस्ट्री पढ़ता है। जागरफ़ी लेता तो दुनियाँ की रफ़्तार ज़रूर जानता।" एक मित्र ने मुस्करा कर कहा और सभी मुख छिपा कर हँस दिये।

"नहीं, मेरा तात्पर्य यह है कि आज संसार के लोग इस बात को मान रहे हैं कि देश का भला अध्यापक ही कर सकते हैं और कोई नहीं।" मैंने अपनी बात स्पष्ट की।

"बेशक! यह कुएँ का मेंढक इस बात को क्या जाने।" एक मित्र बोला।

"आज आप हमारे स्कूल की आँखें खोल देंगे जनाब।" दूसरे लड़के ने मेरी ओर संकेत करके कहा।

मैं झेंप-सा गया और टन-टन घण्टी बोली। वह लड़का चला गया।

मेरा नाम पुकारा गया। मैं न उठा, बड़ी घबराहट थी। एक लड़के ने कहा—"यार सुनता भी है! तेरा नाम···!" मैं चौंक

पड़ा। उफ़ ! नाम भी नहीं सुन रहा हूँ ! सुनता कहाँ से ! दिल की धक-धक मे कुछ सुनाई ही न पड़ता था। ख़ैर, नींद से जागता सा उठा और मेज़ के पास पहुँचा।

"आप इधर खड़े होकर बोलिए, यह पत्र वालों के लिए है।" हेडमास्टर ने कहा।

"अच्छा ! हैं··हैं···हैं···हैं ज़रा पेशाब हो आऊँ ! बस, अभी आया। तब तक किसी और को बुला लें।" कह कर मैं एकदम बाहर आ गया और मेरे पीछे एक ही साथ सारा हाल क़हक़हा लगाकर हँस दिया।

बाहर आया। उफ़ ! यह क्या ! कमबख़्त पेशाब भी न उतरता था। वहाँ बैठे-बैठे तो ऐसा लग रहा था कि धोती में ही निकल जायगा। यहाँ आते ही क्या मौत आती है। बड़ी कठिनता से इससे छुट्टी पाकर हाथ धोये और मैं फिर अपनी जगह आ बैठा। एक लड़का बोल रहा था। उसका समय समाप्त हुआ और फिर मुझको पुकारा गया।

सारा साहस बटोर कर मेज के पास जा खड़ा हुआ। पर यह क्या ! पाँव काँपने लगे। ज़बान सूख गयी, सिर घूमने लगा, दिल की धौंकनी तूफ़ान मेल बन गयी। सामने सारे लड़के घूमते दिखाई दिये। अरे, भूकम्प तो नहीं आ गया।

टनन-टनन-टन-टन घण्टी बजी, मैं नींद से जैसे जागा और कान में कुछ शब्द पड़े—"बोलिये खड़े क्यों हैं ?"

हाल तालियों की तड़तड़ाहट से गूँज पड़ा। मैंने हिम्मत की—"अहँ, अहं, खों-खों श्रीमान सम्पादक जी महाराज··· ।"

और हाल में गड़ तड़ तड़ शी ·ी ी ··ी ...पटपट पट धम्म···धम्म की आवाज़ गूँज उठी। मैं कुछ न समझा।

क्रोध तो बहुत आया कि इनको वह डाँट बताऊँ कि नानी याद आ जाय; पर श्रोताओं को मूर्ख समझना चाहिए; यही समझ कर क्षमा कर दिया।

हैडमास्टर ने घण्टी बजाई और शान्ति कायम हो गयी।

मैंने फिर बोलना आरम्भ किया—"श्रीमान सम्पादक जी महाराज।"

बीच में कोई बोल पड़ा—"जय राम जी की।"

घण्टी बजी और कुछ शब्द कानों में पड़े—"सँभल कर बोलिये।"

मैं सँभला, "श्रीमान् सम्पा···नहीं···नहीं, श्रीमान सभापति जी और भाइयो, आज का विषय आप ··खों···खों···अहँ अहँ मालूम ही है।" एक साँस में कह गया। फिर गाड़ी रुकी और तालियाँ पिट गयीं।

मैं फिर बोलने लगा—"सम्पादक ही देश का उद्धार कर सकते हैं, खों-खों, अहँ-अहँ! अध्यापक नहीं।"

फिर 'अर-र-रें-रें - पड़-पड़-पड़—टप-टप-टप' शोर मचा।

"आप बैठ जाइये," सुनते ही मैं फ़ौरन तेज़ी से सीट पर जा बैठा।

"कम्ब ख्ते"—किसी ने मेरी कमर में नोच लिया। यह क्या! पीछे फिर कर देखा तो मैं अपने एक साथी की गोद में बैठा हूँ। जल्दी में अपनी सीट भी न दिखी।

मैं रुखी हँसी हँस रहा था और हाल खुले कहकहों से गूँज रहा था।

× × × ×

उस दिन की घटना से दिल पर बड़ी चोट लगी, उससे भी अधिक

कि जितनी सुसराल में अपमान होने से लगती है। उन लड़कों की शरारत पर क्रोध भी आया, जिन्होंने ताली बजा और शोर मचा कर मुझे निरुत्साहित किया था। पर मैं इस प्रकार अपने निश्चय से पीछे हटनेवाला न था।

"पहला पुरस्कार किसको मिलेगा?" दिल ने प्रश्न किया।

"श्रीयुत वर्मा को।" दिल के प्रश्न का दिल ने ही उत्तर दिया। इसी समय मुझे चींटी का उदाहरण याद आया, जो सात बार गिर कर भी प्रयत्नशील रही और आठवीं बार सफल हुई। सात बार तो क्या, आयु भर भी गिर कर यहाँ हिम्मत छोड़नेवाले जीव न थे। आखिर इन्सान हैं। चींटी से तो ज्यादा शरीर रखते हैं।

प्राइज-डिबेट के थोड़े ही दिन रह गये। फिर पुस्तक देखी, लिखा था—'नौसिखियों को ही नहीं, अभ्यासियों को भी घर पर तैयारी करनी चाहिए।' बात दिल में बैठाई और तैयारी आरम्भ कर दी। अगली डिबेट का विषय था—'अछूतोद्धार से ही देशोद्धार होगा।' इस विषय पर फुलस्केप के १५-२० लम्बे पृष्ठ लिख डाले और उनको कण्ठ कर लिया।

कमरे के किवाड़ बन्द कर लिए और ज़ोर ज़ोर से कहना प्रारम्भ किया—"श्रीमान् सभापति महोदय, भाइयो तथा बहिनो! श्रीमान् सभा···तथा बहिनो! संसार क्रान्ति में गुज़र रहा है। श्रीमा भाइयो···संसार······।" पढ़ते पढ़ते एक बात याद आ गयी—'अगर स्त्रियाँ मौजूद न हों तो?' हाँ, फिर इस प्रकार कहूँगा। अभी से ध्यान रखना चाहिए। ·· मैं इस प्रकार बोलने लगा—"अगर स्त्रियाँ न हों तो, श्रीमान सभापति तथा भाइयो,

अगर स्त्रियाँ न हुई तो श्रीमान् सभापति तथा भाइयो ही···कहना है···'हरिजनों की 'आह ऐ हिन्दुओ, तुम्हें जला डालेंगी। हरिजनों ···डालेंगी। संसार की ओर देखो; अगर स्त्रियाँ न हों तो श्रीमान् अरे संसार की तरफ नज़र डालो। ' क्रान्ति से गुज़र रहा है।"

मैं बोल रहा था जैसे डिबेटिंग हाल हो! 'खट खट खट' किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। मैं अपनी डिबेट की धुन में बोलता रहा।···"कौन महाशय हैं? दरवाज़ा न खटखटाइये। व्याख्यान में विघ्न न डालिये। आज तुमको अधिकार देने होंगे। हरिजन भी हमारे भाई हैं।'

"खट-खट-खट।"

"मैं ज़ोर डाल कर कहता हूँ। हाय! सभापति जी हरिजन हमारी रीढ़ हैं। ये हमारे जिगर के टुकड़े हैं, कलेजे की खापें हैं।' डिबेट के जोश में था, रोश और जोश के साथ बोला, "ये लोग हमारे जिगर के टुकड़े हैं, अरे पसली की हड्डियाँ हैं।" और बड़ी ज़ोर से सामने रखी हुई मेज़ पर हाथ मारा—'छनन-छनन-छन' टी-सेट ज़मीन पर गिर गया और सारे प्याले इत्यादि टुकड़े-टुकड़े हो गये। उफ़! यह तो गज़ब हो गया!! पर गोल्ड मैडिल जो मिलेगा। फिर जोश आ गया। फिर कहने लगा—"हाँ, तो मैं कह रहा था—ये हरिजन हमारे कलेजे के टुकड़े हैं—इनके उद्धार से···।" 'खट-खट-खट' यह हो-हल्ला कैसा! 'खट-पट्' दरवाज़ा खुल गया। मैंने डाँट कर कहा—"बैठ जाइये, आप लोग विघ्न न डालिये! वरना बाहर चले जाइये।"—मैं पूरा व्याख्यानदाता बन रहा था।

"बस-बस बको मत।" पिता जी ने डाँट कर कहा और झट से मेरी कौली भर ली। माता जी आईं और उन्होंने मेरी चुटिया

पकड़ ली ।

"पानी डालो पानी ।" महरी चिल्लाई और बिना मेरी बात सुने ही मेरे मुँह पर ठण्डे पानी के छींटे दिये जाने लगे । मैं छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा और चिल्लाने लगा--"छोड़ो छोड़ो, ! मुझे पकड़ लिया ! छोड़ो···व्याख्यान में इतनी शरारत, सभापति जी ।"

"अभी न छोड़ो, उससे पूछो कि क्यों आया था । और गूगल की धूनी दो ।"--महरी बोली ।

मैंने फ़ौरन महरी का गला दबा दिया । सब ने छुड़ाया । मैंने शान्त होकर कहा "छोड़िये, मेरा दम घुट रहा है, छोड़िये ।"

"अच्छा, यहाँ क्यों आये थे ? अब तो न आओगे ?" माँ ने चोटी खींचते हुए कहा ।

"आयेंगे हमारा घर है ।" मैं ज़ोर से बोला । मेरी नाक से गूगल की धूनी अड़ा दी गई !

"अरे छोड़ो ! आह ! छोड़ो !"

"अच्छा अब न आना ।" माता जी ने छोड़ दिया । मैं रोने लगा ।

"आपने मेरी जान लेने की ठान ली है क्या ? मेरा नाश कर दिया !" मैं सिसकियाँ लेते हुए कहने लगा ।

"क्या हुआ था लल्ला ?" माँ ने चुमकारते हुए पूछा ।

"जाने कहाँ की बला थी ।" पिता जी बोले ।

"हुआ था खाक ! स्कूल में व्याख्यान देने की तैयारी कर रहा था । हाय ! मुझे मार डाला ।" मैं अभी तक रो रहा था ।

"यह महरी राँड तो कह रही थी कि ललुआ को भूत ने दबा रक्खा है ।"

"बहू रानी ! बबुआ इस तरह चिल्ला रहे थे, हमारी तो बबुआ

ने जान ही निकाली होती! और प्याले वग़ैरह भी तोड़ डाले थे।"—महरी अपराधी की भाँति बोली।

"बड़ी पाजी है यह महरिया, लल्ला का काम ही बिगाड़ दिया।" पिता जी ने सान्त्वना दी।

"फिर याद कर लेना, अभी तीन दिन हैं मेरे बेटे!" माँ ने पुचकार कर कहा। और मैं एक तरफ़ बैठ गया। मैं अभी तक सिसकियाँ भर रहा था।

× × × ×

वह दिन भी आ गया, जब मुझे डिबेटी मैदान में उतर कर नाम कमाना था और सोने का मैडिल प्राप्त करना था।

शुक्र के दिन—शनिश्चर को डिबेट होने वाली थी—मैंने अपनी पुस्तक 'दी डिबेटर' निकाली और उसके मुख्य-मुख्य स्थलों पर दृष्टि डाली। उनमें से दो-चार बातें मैंने मन में बैठा लीं। "बोलते समय कभी-कभी सुनने वाले बड़ा शोर मचाते हैं और व्याख्यान में विघ्न डालते हैं। उनको इस प्रकार के वाक्यों से समझाया जा सकता है।—'यदि आप उकता गये हों तो मैं बैठ जाऊँ। अच्छा, आप लोग पहले शोर ही मचा लीजिये, मैं चुप हुआ जाता हूँ।' ऐसी बातों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। और श्रोता लोग लजा कर चुप हो जाते हैं। कभी-कभी बड़े ढीठ और शैतानों से पाला पड़ता है। उन पर रोब जमाने के लिए ज़रा रोब और जोश भरे स्वर में कहा जा सकता है—'महाशय, आप ज़रा खामोश रहिए। देखते नहीं, एक आदमी अपना मूल्यवान समय दे रहा है और आप उसका अपमान कर रहे हैं। सुनना न हो तो बाहर चले जाइये।"—इसी प्रकार की अन्य बहुत सी बातें मैंने हृदय में अङ्कित कर लीं।

शनिवार आया। मैं पूरी तैयारी के बाद डिबेटिंग-हाल में जा डटा। तालियों की तड़तड़ाहट के बीच हमारे स्कूल के सेक्रेटरी लाला फुन्दालाल जी सभापति के आसन पर सुशोभित हो गये। टनन्‌...टनन्‌...घण्टी बजने लगी और डिबेटर अपने-अपने स्थान पर जाकर बोलने लगे। मैं अपने बुलावे की राह देख रहा था कि 'टनन्‌ टनन' और मैं तुरन्त अकड़ता हुआ बिना बुलाये अपने स्थान पर पहुँच गया। तालियाँ पिटीं। मैंने दिल में कहा—"बच्चो आज पूरी तैयारी है। वे दिन तो हवा हो गये।"

मैं अपने स्थान पर खड़ा हुआ और मैंने एक दम रेलगाड़ी छोड़ दी। याद तो था ही, रुकावट कैसी! मैं बोला,—"श्रीमान सभापति जी, अगर स्त्रियाँ न हों तो.........उफ़! यह क्या! मैं फ़ौरन संभल गया। कुछ दुष्ट लड़के हँसे पर सभापति ने बड़े गौर से सुना। नई शैली थी। मैंने फिर रेलगाड़ी छोड़नी प्रारम्भ की—"श्रीमान्‌ सभापति महोदय, सम्मानित अध्यापकों तथा भाइयो! आज संसार में क्रान्ति हो रही है। संसार एक परिवर्तन से गुजर रहा है।... पर भारत के—भारत की मथुरा तीन लोक से न्यारी है।—और आज कल संसार में क्रान्ति हो रही है। संसार भर के मनुष्य मनुष्य है और भारत-भारत—भारत के मनुष्य कुत्ते हैं।"

'अ—हा-हा-हा-हा ही-ही-ही—' कुछ लड़कों को हँसी आई, पर मैं रोब डालते हुए बोला—

"यह भी कोई हँसी की बात है। मेरा मतलब हरिजनों से है, आप लोगों से नहीं या सभापति जैसे महापुरुषों से भी नहीं है।" सुन कर और तो हँसने लगे; पर सभापति अपने सम्मान पर पोपले मुँह से मुस्कराते हुए जुगाली करने लगे।

"हाँ तो, हरिजनोद्धार बिना देश का कल्याण नहीं। इनको मनुष्य समझना चाहिए। विदेशों में हरिजनों में से बड़े बड़े महान पुरुष हुए हैं। टैगोर साहब और गाँधीजी इस बात के गवाह हैं।" टैगोर और गाँधी के नाम से सभा में रोब जम गया। रोब जमता देख मैंने और भी जोश के साथ कहना शुरू किया—"सभापति महोदय तथा भाइयो! अब वह समय आ गया है, जब आप इनको अपना भाई समझें, वरना······इन······गरीबों···की··· ··· आहें······।" धम्म धम्म, मैंने मेज़ पर दो चार हाथ मारे। "इन गरीबों की आहें, आपको बरबाद कर देंगी। हमारे समाज को जला डालेंगी।" एक साथ ही मैंने एक हाथ फिर जोर से मेज पर मारा।

'तड़ तड़ तड़ तड़······अ रें रें रें रें···शी शी शी शी···अहा हा···हा···हा···हा टप ··टप'—तमाम हाल हँसी से गूँज उठा। और मैं उन पर रोब जमाने लगा। शोर में कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। मैं उनको डाट रहा था, "नालायक बोलने भी नहीं देते, खामोश!" और मेरे कन्धों को किसी ने हिला डाला। हँसी बराबर जारी रही।

"नालायक बैठ जाओ।" किसी ने जोर से मुझसे कहा।

मैंने बड़े रोब और जोश से पीछे की ओर देखा—"क्या है?" मैं बोला।

"बदतमीज़ बोलना भी आता है?" ड्रिल-मास्टर ने बड़ी सफाई से मेरा कन्धा झकझोर डाला।

"बैठ-बैठ" मौलवी ने भी अकड़ दिखाई।

"ओ डिबेटर—बोले जा।"

"बैठाइये—अबे और बोल डिबेट में"—शोर में कितनी ही आवाज़ें कानों में पड़ीं और हाल में तो पूरी अराजकता फैल गयी। मैंने पीछे देखा—हेड-मास्टर आँखें लाल कर रहे थे। सेकिण्ड मास्टर दाँत पीस रहे थे। मौलवी अलग फड़क रहा था और सभापतिजी—यह क्या! उनकी सफ़ेद मूँछ, दाढ़ी और रेशमी अचकन पर स्याही ही स्याही!! वह भी अपनी आँखें चमका रहा था। मैंने कुछ भी न समझा और सब मास्टर मेरे ऊपर गुर्रा उठे। सभापति भी खड़े हो गये।

लड़कों ने शोर किया। मैं अभी वहीं खड़ा था और मामला बिल्कुल मेरी समझ में न आ रहा था—"वाह रे डिबेटर! इनाम मार दिया, शाबाश बे। अबे शाबाश, अबे तुझे मेरी कसम शाबास"—शोर में मुझे सुन पड़ रहा था।

सभापति अपनी अचकन झाड़ते, मेरी तरफ तेज़ और क्रोध भरी नज़र से घूरते और अपने पोपले मुँह से जुगाली करते हुए उठ कर चले गये। सब मास्टर साहब भी उनके साथ हो लिए। सभी की नज़र मेरी ओर लाल लाल हो रही थी।

सब लड़के 'अ रें रें रें रें शी··· ी ी ी तबड़ तबड़···धम्म धम्म धम्म—अहा-ही-ही-ही-ही' करते हुए मेरे पास जमा हो गए।

"यार आज इनाम मार दिया। क्या खूब बोला। अबे वाह बे डिबेटर!" मेरे एक दोस्त ने कहकहा लगा कर कहा।

"इनाम की क्या चलती है, इन्होंने तो कमाल ही कर दिया। क्या ज़ोरदार हाथ मारा।" दूसरा दोस्त हँसता हुआ बोला।

"बेचारे बुढ्ढे की तो रँगाई ही हो गई। अहा हा-हा-हा।" एक स्वच्छन्द कहकहा फूट पड़ा।

"सो कैसे, मैं समझा नहीं?" मैंने पूछा।

"बुद्धू हो न निरे। अबे तूने हाथ जो मारा मेज पर तान कर, तो दावात की स्याही कूद कर सभापति के मुँह पर पड़ी। सारे कपड़े रँगे गये।"

अहा हा-हा-हा ! हा...हा...हा...हा... ! अहा हा-हा-हा... अबे वाह बे ! अहा हा हा डिबेटर !—लड़के हँस रहे थे और मैं उनके मुँह को देख रहा था।

"यार तू भी कमाल का कलाकार है। वह खूसट भी याद करेगा। कभी सभापति बने थे डिबेट के।"

"*गलती तो उसी की थी, काहे को रक्खी थी दावात पास।* बोलने वाला तो जोश खायगा ही।" मेरा एक और साथी बोला और नौकर ने आकर खबर दी कि सब लड़के अपने-अपने घर चले जायँ। डिबेट समाप्त हो गयी है।

प्रेम की पीड़ा

दीवाने विगडसर की प्रेम-कहानी के सिलसिले में मुझे भी प्रेम के बारे में एक लेख पढ़ने का मौका मिला। उसमें लिखा था जिसने आदमी होकर भी प्रेम की पीर से छटपटाने का मज़ा न लिया, किसी बेपीर की मुहब्बत में तड़प-तड़प कर सोने-से दिन, चाँदी-सी रातें न बिताईं; वह इन्सान नहीं, हैवान है। वह आदमी दुनियाँ में बेकार पैदा हुआ, जिसने अपनी प्रेमिका की गली में जूतियाँ न चटकाईं—वहाँ की हज़ारों बार धूल न फाँकी। उस कम्बख्त को ज़िन्दगी का क्या मज़ा मिला। जिसने निठुर प्रेमिका के वियोग में सर्द आहें न भरीं, सैकड़ों रातें उस कठोर हृदया की याद में टूटी चारपाई पर करवटें ले ले कर न निकाल दीं।

लेख बड़ी दिलचस्पी से पढ़ गया। पढ़ कर मालूम हुआ कि मैं कोरा हैवान, निरा ठूँठ, कतई जानवर और सोलहों आने सड़ियलपन की मिसाल हूँ। पास ही एक शायर रहते थे, उन्हीं से अपनी लाग-डाट थी। उस लेख को हाथ में लेकर मैं उनके पास जा पहुँचा। देखते ही बोले—"इतने घबरा-से क्यों रहे हैं? खैर तो है?"

"ख़ैर-वैर कुछ न पूछिये।" मैंने उत्तर दिया।

"यों ही हाथ-पैर डाल बैठते हो, कुछ कहो भी ?"

"इसे पढ़ लो न" मैंने अखबार उनके हाथ में थमा दिया। उन्होंने लेख बड़े ग़ौर से पढ़ा। और मुस्कराते हुए कहा—"चीज़ तो गज़ब की है। कलम चूमने लायक है। वाह ! क्या खूब कहा है, वह इन्सान नहीं, हैवान है। आदमी नहीं, ठूँठ है।"

मुझे उस कम्बख्त की बात पर बड़ा गुस्सा आया। मेरी बात सुनी नहीं, अपनी गाने लगा। आखिर मैं बोला—"यार, तुम अपनी ही राम-रटना ले बैठे। मेरी भी कुछ सुनी ?"

"कुछ खेलो-बकारो भी। वाकई मज़मून गज़ब का है। मोहब्बत ओह् ......मोहब्बत भी क्या......?"

"अपनी ही बके जाओगे, मेरी ज़िन्दगी तो यों ही बरबाद हो गई।" मैंने कहा।

"क्यों, क्यों, यह कैसे ?" उन्होंने ताज्जुब से पूछा।

"बरबाद न हुई तो और क्या ? इस ज़िन्दगी में किसी के उलझे हुए काले घुँघराले बालों में फँस कर छटपटाने का मौका न मिला, जब यह दिल भी किसी के नयन-बाणा का शिकार होकर तड़प-तड़प कर आँखों से बह निकलता।"

"अब भी क्या बिगड़ा है ? किसी बेदर्द की उलझी लटों में फँसकर तड़प सकते हो। किसी की तिरछी नज़र के तीरों से घायल होकर आहें भर सकते हो।" शायद मेरा दिल रखते हुए बोले।

"अब क्या खाक किसी के उलझे घुँघराले बालों में फँसा जायेगा, आजकल की छोकरियाँ तो बाल भी कटा देती हैं।"

"अरे, तो इनमें क्या सिर घुसेड़ कर फँसने का इरादा है ?"

"खूब बताया, हाँ, नज़र के तीरों का तो अब रिवाज नहीं

रहा।" मैंने बिल्कुल सीधेपन से कहा।

"तो नज़र का पिस्तौल सही।" शायर साहब मुस्कराकर बोले।

"तीर खाकर तो तड़पने का मौका भी है और लुत्फ़ भी, पिस्तौल से तो एक ही फ़ायर में ख़ातमा हो जायगा।"

"रहे निरे भोंदू ही। मुहब्बत को क्या समझ रक्खा है तुमने?"

मेरी जान में जान आई। "लेकिन......" मैंने फिर फ़िक्र में पड़ कर कहा।

"लेकिन क्या?" शायर साहब ने पूछा।

"अब मेरी उम्र भी तो.........।"

"क्यों झूठ बकते हो? ज़्यादा से ज़्यादा ४५ की होगी।"

"४५ की भी तो बहुत है।" मैंने कुछ लजाते और मुस्कराते हुए कहा।

"तुम्हारा सिर। ५०-५५ में तो जवानी भरती है। और जहाँ सौ-पचास सफ़ेद बाल बीन डाले कि पूरे हो गये २५ के।

"तो यार, फिर कर दो न ठीक, कैंची है?" मैंने आतुरता दिखाते हुए कहा।

"हाँ हाँ, बैठो।"

शायर साहब ने कैंची निकाली। मैं एक दम बैठ गया। दिल में गुदगुदी हो रही थी। कितनी ख़ुशी थी। किसी से मैं प्रेम करूँगा और वह मुझे तड़पायेगी और छटपटाने के बाद हमारा मिलन होगा। मैं इसी विचार में था कि इधर मूँछों की सारी खेती बरबाद कर दी गई।

"देखो न शीशा! कितनी लाजवाब लगती है।" शायर ने कहा।

मैंने शीशा देखा, उसने बड़ी बेरहमी से मूँछों पर दराँती चलाई थी, बंडी-बंडा-सी लग रही थी। मैं उतरे हुए दिल से बोला—"ये तो कुछ जँची नहीं।"

"तुम्हारे सिर की कसम, पूरे २५ के लग रहे हो। हाँ, खूब ज़रा··· ।" उसने कैंची लेकर 'चट' कर दिया।

"यह क्या! एक ओर की साफ़! यह तो बिकुल्ल भद्दी कर दी।" मैंने निराश हो कर कहा।

"उफ़! तुम नाश कराओगे। ज़रा बैठे रहो! हाँ, इधर भी।" —चट —"अब हो गए, तुम्हारी जान की कसम, पूरे २० के।"

मैंने शीशा देखा। शायर साहब ने मूँछें तराश कर बिल्कुल खस्सी कर दी थीं।

"कुछ खराब तो नहीं हो गईं?"

"अमाँ, क्यों बकते हो। पूरे बीस के जवान लग रहे हो। अब कोई सुन्दरी अपना दिल इस तरह तुम्हारे सीने पर देकर मारेगी, जिस तरह उपले पाथने वाली उपला दीवार पर फेंक कर मारती है और झट उस पर चिपक कर रह जाता है।

"अच्छा, अब बताओ तुमने किसी को दिल दिया है।"

"वाह इसके बिना शायरी क्या।" शायर साहब ने शान से कहा।

"तो अब मैं भी इस ज़िन्दगी को पूरी बरबाद न होने दूँगा! कह कर मैंने शायर से विदा ली।

× × × × ×

सुबह का समय था। पार्क में घूमने गया। वहाँ सैकड़ों औरतें हँसती, बातें करतीं, खिलखिलातीं चक्कर काट रही थीं।

मामला यों हुआ—एक लड़की का रूमाल गिर गया। मैंने झपट कर उसे उठाया और ज्योंही वह चक्कर पूरा करके फिर वापिस आई, मैंने उसको रूमाल देते हुए कहा। "हें हें...हे... आप का रूमाल गिर गया था।" उसने रूमाल ले लिया, देखा और कहा—"आपने बड़ी कृपा की। मैं आपकी बड़ी आभारी हूँ।" और कह कर वह मीठा मुस्कायी भी थी।

"नहीं, नहीं धन्यवाद की कोई जरूरत नहीं, यह तो अपना काम ही है।"

"तो आप यहीं पार्क में चौकीदारी का काम करते हैं?" उसने कहा।

"नहीं, मैं कचहरी में नौकर हूँ—हें...हें...हें...हें...।" मैं बड़ा नम्र बन रहा था।

"अच्छा, माफ़ कीजिये।" वह कटाक्ष करती हुई बोली। वह फिर मुसकराई। उसकी आँखें चमक रही थीं। वह मुसकराती हुई आगे बढ़ गई। और मैं भी अलग चलने लगा, पर दिल उसी के साथ था।

समय अधिक हो गया। धूप निकल आई। वह चलने लगी। उसने पार्क से जाते समय मुझे नमस्ते की। वह चली गई। मैं भी घर आने लगा। दिमाग उधर ही था। पैर न जाने कहाँ पड़ रहे थे। यकायक एक औरत से टक्कर लगी।

"चलता किधर है, देखता किधर। आँखें नहीं हैं क्या?" वह एक दम लाल हो गई। मेरी निद्रा भंग हुई।

"माफ़ कीजिए। लेकिन एक शरीफ़ आदमी को गाली......!" मैंने जरा रोब जमाते हुए कहा।

"अभी निकलवा दूँगी शराफ़त ? बुलाऊँ किसी को ?" वह एकदम लड़क कर बोली।

वह तो झगड़ा करने पर उतारू थी। मेरी सीटी-पटाख्च गुम ! मैं जान बचा कर भागा। किसी तरह वहाँ से बच कर घर आया। आकर सारा मामला शायर साहब को सुनाया।

"अब सचमुच तुम किसी के प्रेम में फँस गये हो।" शायर साहब बोले।

"नहीं यार।" मैंने कुछ शर्माने का भाव दिखाया, जिससे मालूम हो कि बात बिल्कुल ठीक है।

"क्यों दाई से पेट छिपाते हो ?" उसने चश्मे से आँखें चमकाते हुए रहस्यपूर्ण मुस्कराहट से कहा। मैंने शायर साहब से सारी कहानी कह दी और टक्कर लगने वाली बात भी बतला दी।

"बिल्कुल ठीक ! प्रेम में रुकावटें तो पड़ती ही हैं। अब बात पक्की हो गई, तुम्हारा उससे प्रेम ज़रूर हो गया है।" उसने मेरी आँखों में आखें डालते हुए कहा।

"तो फिर क्या करूँ ?" मैंने पूछा।

"रात-भर तड़पते रहो।" वह बोला।

"सो कैसे ? दिल में दर्द तो होता ही नहीं।"

"लेट जाना खाट पर। समझना कि दिल में मीठा-मीठा दर्द उठ रहा है। कुछ देर अभ्यास करने पर दर्द होने लगेगा और तुम भी तड़पने का मज़ा ले सकोगे।" शायर साहब ने गुरूपन दिखाते हुए मुझे समझाया।

"अगर आँसू न आयें ?" मैंने जिज्ञासा भरी दृष्टि से पूछा।

"तो आँखों पर थोड़ी पेनबाम लगा लेना।"

"हुश ! बकते हो।" मैंने झेंपते हुए कहा।

"शुरू में इसी तरह किया जाता है। बाद में सारा मामला सच बन जाता है। यह तो कार को कसरत है।" उसने सारी बातें बहुत अच्छे ढङ्ग से समझा दीं।

"इस तरह कुछ न होगा, तुम बनाते हो?"

"अजीब भोंदू हो। भाई, कोशिश से हर एक काम हो जाता है। पहले हर एक काम की मश्क की जाती है, फिर उसमें कमाल हासिल हो ही जाता है।" उसने अनुभवी की तरह सब-कुछ समझा दिया और मैंने नौसिखिए विद्यार्थी की तरह सब-कुछ समझ लिया

× × × ×

घर आकर मैं अपने कमरे में लेट गया। मैं तल्लीन हो गया प्रेमी प्रेमिका की कल्पना करने में। सोचते-सोचते उसकी तस्वीर पुतलियों में उतर आई और उसका रूप आँखों के सामने नाचने लगा। उसका सुन्दर लावण्यपूर्ण मुख, कमल सी आँखें, उसके काले-काले घुँघराले बाल—जैसे कमल पर मण्डराती हुई भौंरों की कतारें हों—यह सब मेरे मन को ललचाने लगे। मैंने सोचा—"उसके मुस्कराने पर फूल झड़ते हैं और रोने पर मोती बरसते हैं। बातें करती है तो कानों में अमृत टपकता है।"

और हमारी 'उन' जनाब का भी हाल सुन लीजिए, जिनके साथ चाँदी-से दिन और सोने-सी रातें मिट्टी में मिल गईं। वह है सोलहों आने अलीधत्त गँवार। हँसती हैं, तो मकान की छत काँपने लगती है; रोती हैं, तो घर की दीवारें दरार खा जाती हैं। चलती हैं, तो ज़मीन धँसती-सी मालूम होती है और सोती हैं, तो चक्की-सी चलने लगती है। रोने में भैंस रम्भाती है और गाने में गीदड़ बोलते हैं। न पहनने की तमीज़, न ओढ़ने का ढङ्ग। वो

दो घड़ी का घाघरा चाहिए और ढाई सेर का ओढ़ना। साड़ी वाड़ी का जिक्र किया तो आड़ी आईं।

और आह —मेरी प्राण......वह तो जनाब पहनती है, हलकी सी साढ़े तीन तोले की झिलमिल साड़ी, जिसमें बिना हवा ही उठती है लाखों लहरियाँ। और जनाब, पहनती है बिना बाहों की बाडी। कितने अच्छे लगते है उनके पतले-पतले लटकते हुए मोम-से सुकुमार हाथ। एक इधर हमारी श्रीमती जी के हाथ है मोटे मोटे मूसल-से; जैसे किसी दङ्गल मे उतरना हो।

सोचते-सोचते दिल में कुछ दर्द-सा मालूम होने लगा। आँखों में आँसू अभी भी न थे। उठा और आँखों में सेन-बाम लगा लिया। उससे वाकई आँखों में आँसू आ गये। अब समस्या यह थी कि दिल का दर्द किसे सुनाऊं। लज्जा की महतारी तो अपने चौका-चूल्हे में लगी हुई थी। खाना बना चुकने पर वह मेरे कमरे में आई। मै एकदम करवट बदल कर रह गया और बड़े जोर से एक 'आह' की। वह एकदम चौंक पड़ीं।

"दर्द है क्या ?" उसने पूछा।

"हाँ, बड़े जोर का है।" मैंने कराहते हुए कहा।

"डाक्टर बुलाऊँ ?" वह तो घबरा-सी गई।

"डाक्टर-वाक्टर की बात न करो लज्जा की अम्मा। हाय !" मैने और ज्यादा कराहना शुरू किया।

"इतना न घबराओ। तुम्हारे तो आँसू भी......? दर्द बहुत अधिक मालूम होता है, अभी बुलाती हूँ डाक्टर।"

डाक्टर बुलाने के वास्ते वह लड़का भेजने के लिए तैयार-सी हो गई।

"डाक्टर से ठीक न होगा। आह! बड़े ज़ोर का दर्द है।" मैंने उसे रोका और अपने दिल को हाथ से दबा लिया।

"आख़िर कैसा दर्द है जिसे डाक्टर भी ठीक नहीं कर सकता?" वह हक्की-बक्की-सी सामने खड़ी थी।

इस दर्द में तड़पने में ही मज़ा आता है प्यारी? आह! कैसी हूक-सी उठती है।" मैं तड़प उठा।

"हैं! यह क्या? कैसा दर्द है?" वह विस्मय से पूछने लगी।

"तुमसे न कहूँगा तो और किससे कहूँगा। यह प्रेम-पीड़ा है, दिल का दर्द है। हाय! कैसी हूक उठ रही है। बड़ी मीठी-मीठी।" मैंने हृदय पर हाथ रख लिया।

"क्या बकते हो? किस कुल्टा ने जादू किया है? मैं!" उसकी त्योरी बदली हुई थी।

"उसे ऐसा न कहो! प्यारी! उसे कुछ भी न कहो।" मैं कराहता हुआ बोला।

"उस कलमुँही का मुँह फूँकूँ। बताओ कौन है वह?—नहीं तो अभी···" उसने रोब जमाते हुए कहा।

"ऐसी बात न कर। ज़ख़्मी हृदय पर नमक न लगा। दिल तड़प रहा है। हाय!" मैंने आँसू भर कर उसकी ख़ुशामदें कीं।

"उसके मुँह पर आग डालूँ, कौन है कुल्टा वह? इस बुढ़ापे में तुम्हें यह क्या सूझी? अभी शोर कर मुहल्ले वालों को बुलाती हूँ?" वह शोर मचाने की धमकी देने लगी।

"प्यारी! ऐसा न कर। तुझे अपने पतिदेवता की कसम। ऐसा न कर। तेरे हाथ जोड़ूँ।" मैंने बड़ी नम्रता से कहा।

"नहीं, मैं अभी··· वरना बताओ?"

"अरे, क्या सचमुच शोर करती है? हैं हैं ऐसा न कर।" मैंने

उसे रोकना चाहा और वह और भी जोर-ज़ोर से बोलने लगी।

"मैं अभी सारे मुहल्ले में शोर मचाती हूँ। इसलिए यह स्वांग रचा है। कौन है वह। बताओ अब भी—नहीं तो ...."

हूँ हूँ... ऐसा न कर, शोर न मचा। मुहल्ले वाले सुनेंगे तो क्या कहेंगे।" मैंने डर के भाव दिखलाए।

"तो फिर बताते क्यों नहीं, वह कौन है?"

"है तो वह कोई भी नहीं। हूँ...हूँ हूँ...।"

"झूठ! बिल्कुल झूठ! यह नहीं हो सकता। अभी तो इतना दर्द दर्द चिल्ला रहे थे।" वह अविश्वास प्रकट करते हुए बोली।

"लल्ला की कसम कोई नहीं है। मैंने सोच लिया था कि मैं किसी से प्रेम करने लगा हूँ। देखूँ प्रेम की पीड़ा कैसी होती है। इसीलिये यह सब-कुछ किया था।" मैंने उसे यकीन दिलाने का प्रयत्न किया।

"तो यह ढोंग किस लिये रचा था?" उसने शांत होते हुए पूछा।

"कविता करने को मन चाहता था!" मैंने कहा।

"कविता इस तरह की जाती है! कुछ बात ज़रूर है!" उसने अब भी सन्देह किया।

"नहीं, बात कुछ भी नहीं है!"

"तो ठीक-ठीक बताओ।"

"उस शायर दोस्त ने यह सब कुछ करने को कहा था कि शायरी करनी हो तो किसी के प्रेम में तड़पो—किसी की याद में छटपटाओ।" मैंने सारा मामला उसके सामने खोल दिया।

"ये मुए शायर भी बड़े अजीब जानवर हैं। और तुम भी बड़े मक्कार हो।" वह मुस्कराती हुई रसोई-घर में चली गई।

साँडनी की सवारी

अब बात-चीत में सवारियों का विषय छिड़ गया। सबने बताया कि उन्होंने किस-किस जानवर की सवारी की है। मुझ से एक मित्र ने पूछा "तुमने किस जानवर की सवारी की है?"

"सब जानवरों की।"— मैंने गर्व से उत्तर दिया।

"गधे की भी?"—एक साथी ने हँसते हुए पूछा।

"अरे, उसमें तो मुझे पहला इनाम मिल चुका है।"—मैंने कहा।

सब लोगों के साथ ही साथ ताँगेवाला भी हँस पड़ा। वह हँसते हुए बोला—"साहब, सवारियाँ सब अच्छी हैं, उनमें बुरी क्या और अच्छी क्या?"

"अच्छा, ऊँट पर भी चढ़े हो?"—एक मित्र ने पूछा।

"इस पर आज तक नहीं चढ़ा हूँ। जी तो..." मैं बड़े उत्साह के साथ बोला। सामने ऊँट जा रहा था। मैंने अब तक इस शरीफ़ जानवर की कभी सवारी नहीं की थी।

"तो चढ़ोगे क्या? पूछें ऊँट वाले से?" एक मित्र बीच ही में बोल पड़ा।

"हाँ, हाँ, भई पूछो न, तुम्हें मेरी कसम।"

"ओ भाई ऊँट वाले, ज़रा इधर आना।" एक साथी ने उसे बुलाया। ऊँट वाले ने अपना ऊँट हमारी ओर मोड़ दिया।

"अपने ऊँट पर हमारे इन बाबू को चढ़ा लोगे ?" एक मित्र ने उससे पूछा और मेरी ओर संकेत किया।

"जी हाँ, क्यों नहीं सरकार ? लेकिन इसके पहले अगर आप के पास दो बीड़ियाँ हों तो—।" उसने विनय-पूर्वक कहा। मैंने तुरन्त दो पैसे निकाल कर सामने की दूकान से एक दियासलाई तथा बीड़ियाँ मँगा दी।

बाद में मालूम हुआ कि वह ऊँट नहीं साँडनी थी, उसके मालिक ने उसे नीचे बैठाया। उत्साह, कुतूहल, धड़कन, आतुरता और फुर्ती से मैं उसकी पीठ पर सवार हो गया। काठी के आगे के आसन पर मालिक बैठा और पीछे मैं बैठ गया।

"सरकार काठी के आगे डंडे को अच्छी तरह पकड़ लीजिए। वैसे यह बड़ी अच्छी साँडनी है। आप जैसे अमीरों के ही बैठने लायक है।" कह कर उसने नकेल को झटका दिया और कहा—"जौ-जो…"

साँडनी खड़ी हो गयी। अरे, मैं एकदम ऊँचा गया, ताँगे वाला और दोस्त तो मेरी दृष्टि में गोया एकदम नीचे गिर गए। साँडनी लम्बे-लम्बे कदम रखने लगी, और ताँगा भी उस के साथ-साथ दौड़ने लगा। ताँगे में बैठे मित्र मुझे देख कर मुस्करा रहे थे। मेरी नाक और कानों में हवा बिना पूछे घुसी आ रही थी। साँडनी ने अलबेली चाल दिखाई। मैं उसके ऊपर झूलने-सा लगा। पेट में सोई हुई पूरियों ने करवटें बदलनी शुरू कीं। कभी कभी तो ऐसा

मालूम पड़ता कि सारा खाया खवाया मुँह के रास्ते से निकल पड़ेगा। पूरियों को नाचते-कूदते देखकर पानी भला कब शान्त रह सकता था वह भी लगा इधर-उधर उछलने। पेट में पूरियाँ कुश्तम-कुश्ता कर रही थीं और पानी मियाँ उनका बीच-बचाव कराने में परेशान थे। एक अजीब हलचल मची हुई थी। ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे पेट में तूफ़ान उठ रहा हो। आँतें कुलबुलाने लगीं और पसलियाँ चक्की के पाटों की तरह आपस में रगड़ने लगीं।

"सँभलिये सरकार!" साँडनी के मालिक ने कहा।

"हाँ, बिलकुल सँभले बैठा हूँ। तुम मज़े में चलाये जाओ।" साहस बटोर कर मैं बोला।

उसने नकेल को झटक दिया। साँडनी ने 'बँ-बँ-बँ-बँ' की और गर्दन लम्बी करके दौड़ने लगी। वह बोला—"हाँ, शाबाश बेटी? देखिये सरकार, ताँगा पिछड़ गया।"

"हाँ, खूब अच्छी चलती है।" मैंने कहा।

"सरकार चलने की पूछते हो? यह अभी और तेज़ दौड़ सकती है।" कह कर उसने नकेल और भी खींची। साँडनी और तेज़ी से दौड़ने लगी। ताँगा भी तेज़ हो गया। मेरा मुँह न जाने कैसा हो रहा था कि सभी साथी तालियाँ पीट रहे थे और कहकहा लगा रहे थे। इतना तो मुझे भी मालूम हो रहा था कि आज पेट में इतनी हवा भर जायगी कि रोटियों के लिए जगह नहीं बच रहेगी। कान तेज हवा के झोंकों में सर-सर करने लगे थे।

"शाबाश" ऊँटनी वाले ने नकेल ढीली की, और साँडनी 'बँ-बँ-बँ-बँ' करके ज़रा धीमी चाल से चलने लगी। बड़ी ज़ोर से मेरा सिर साँडनी-वाले की पीठ में लगा और सब खिलखिला कर हँस पड़े।

"सरकार, काठी पकड़े रहिये। मेरी कमर ही तोड़ दी आपने तो।" उसने कहा। उसे क्या मालूम कि मेरी नाक का कुचला ही बन गया। मैं एक हाथ से काठी पकड़ कर दूसरे हाथ से नाक मलने लगा।

× × × ×

मुझे घबराया देख कर साँडनी के मालिक ने उसे धीरे-धीरे चलने दिया। और खुद बीड़ी जलाकर पीना शुरू कर दिया। ताँगा साथ हो लिया था। चलते-चलते मुझमे और मित्रों मे बातें होने लगीं।

"बस यार, तुम तो इतने मे ही डर गए।"-- किसी ने कहा।

"नहीं तो।" मैने वीरता-पूर्वक उसके कथन का प्रतिवाद किया।

"तुम्हारा मुँह तो फक हो रहा था।" एक साथी बोला।

"जो कुछ भी हो; साँडनी तो अभी गरम भी नहीं हुई।"-- एक मित्र ने कहा।

"हाँ सरकार अब करूँगा गरम। बड़ी चलने वाली है।"-- बीड़ी का कश खींचते हुए उसका मालिक बोला।

"अब की बार देखना, कैसे जम कर बैठता हूँ।" मैंने शान बघारते हुए कहा।

"हाँ सरकार, तभी तो सवारी का मजा है।" —ताँगे वाला बोला।

"यह गधा नहीं है कि इनाम ले जाओ।" कहकहा मारते हुए साथी ने कहा।

मुझे यह बात जरा बुरी लगी। मैंने उसको आँखों में ही

घूरा और साँडनी वाले की ओर संकेत किया। वह मुस्करा कर चुप हो गया।

"हाँ तो सँभल जाइये हुजूर ? अब साँडनी गरम होती है।" बीड़ी फेंक कर साँडनी वाला बोला और फिर नकेल को एक जोर का झटका दिया।

मुझसे —"जमे रहिये" - कहकर उसने साँडनी को तेज किया। ताँगा भी उसके साथ भागने लगा। ताँगे में भी आ हा—हा—हा का शोर मचने लगा। और तालियाँ बजने लगीं। घोड़ा अपनी पूरी ताकत लगा कर भाग रहा था।

बँ ' बँ बँ ''बँ'''करके, गर्दन आगे फैला साँडनी तेजी से भागने लगी। अब मेरी हवा बिगड़नी शुरू हुई। नाक के नथुने फूलने लगे, कानों में सन-सन होने लगी। मुँह लाल होने लगा और पेट में फिर जैसे क्रान्ति-सी मच गई।

"हूँ'''हूँ'''हूँ हूँ हूँ'''शाबाश बेटी।" साँडनी वाले ने उसे और भी तेज करते हुए कहा। वह गर्दन कभी आगे बढ़ाती, कभी पीछे करती और कान खड़े किये, हाथों को फुड़फुड़ाती हुई तेज हो गई, और हवा में उड़ते से शब्द कानों में पड़े—"सम्भलिये, सरकार'''हूँ'''हूँ'''हूँ'''शाबाश वाह बेटी।"

मैं जैसे उड़न-खटोले में बैठा झोंटे खाने लगा। कभी एक गज आगे हो जाता और कभी एक गज पीछे। कितनी ही बार मेरा सिर साँडनी वाले की कमर से लगता।

"हूँ हूँ'''हूँ'''हूँ'''शाबाश और तेज। हूँ हूँ'''हूँ'''।" कह कर उसने साँडनी की फिर नकेल ढीली की और झटका दिया। वह और भी अधिक तेज हो गई।

"आ—ा ा···ा··ा···ा···ा···ा य ! ई·· ी···ी ी य।" मेरी घिग्गी बँध गई। मैंने डर कर साँडनी वाले को पकड़ लिया। उसने मेरा हाथ अपने हाथ ा पकड़ते हुए कहा —"बाबू जी सँभले रहिये, काठी का डण्डा पकड़िये।" पर मैंने उसे न छोड़ा। मैं तो हवा में उड़ा जा रहा था। डर से घिग्घी बँध रही थी। उसने मुझे घबराया देखकर साँडनी की चाल ज़रा हल्की की। वह गुस्से से भर गई। नथुने फुलाती हुई दौड़ रही थी। नकेल खींचने से धीरे हो गई, पर अब भी वह बहुत तेज़ थी। मेरी सिट्टी गुम, मुँह लाल, कान सरर-सरर, दमखता और दिल धक्-धक्! कहने को ताँगा इस बार भी काफ़ी पीछे रह गया था, पर मेरे कमबख़्त साथी खिलखिला कर हँस रहे थे। मैं पीछे फिर भी न देख पाता था। ओह!

चलते-चलते ज्योंही साँडनी सड़क छोड़कर जाने लगी, उसके मालिक ने ज़ोर से नकेल खींची और ज़ोर से एक झटका दिया। मैं एक तरफ़ को ऐसा हुआ कि गिरते-गिरते बचा। बड़ी कठिनाई से वह फिर रास्ते पर आई। गुस्से में भरी थी, लगी फिर दौड़ने। ताँगा पास ही आ गया था। घबराहट और क्रोध में भर कर वह दुष्टा बँ···बँ···बँ···बँ···बँ···करती हुई ताँगे की ओर भागी। ताँगे का घोड़ा चौंका और ऐसा डरा कि सड़क छोड़ कर भागने लगा। ताँगे-वाला चिल्लाया—"अरे रोक; रोक, यह क्या करता है।" पर रुकती वह किससे थी? वह घोड़े की ओर दौड़ी और घोड़ा घबरा कर ताँगे को गड्ढे में ले गिरा।

"हाय · य य···रे—ए—ए—ए—ए।" की आवाज़ कानों में पड़ी और साँडनी भाग निकली। यहाँ अपनी जान की पड़ी थी, दोस्तों का गड्ढे में गिर कर क्या बना, यह जानने का किसे अव-

काश था। उन बेचारों के लिए दुआएँ भी न कर सका। क्योंकि अपने लिए ही काफ़ी दुआएँ करनी पड़ रही थीं। वे भी कौन सुन पाता था।

कुछ समय बाद साँडनी कुछ धीरे-धीरे चलने लगी थी। उसके मालिक ने नकेल मज़बूती से पकड़ी; पर साँडनी की गर्दन अब भी सीधी थी, कान खड़े थे, ओंठ फुड़-फुड़ कर रहे थे और पुतलियाँ चंचल हो रही थीं। मुँह को कभी वह दाएँ घुमाती, कभी बाएँ।

"इसमें तो बड़ा दम है।" मैंने हाँफते हुए साँडनी के मालिक से कहा।

"आप दम की पूछते हैं। यह कई-कई दिनों और रातों चलती रहती है।" उसने गर्व से उत्तर दिया।

"हूँ ?" मैंने हुँकारी भरी और दम-सा लेने लगा।

"बड़े-बड़े ठाकुर इसके दम की तारीफ़ किया करते हैं। बीका-नेरी रेगिस्तान में कई सफ़र कर चुकी है, सरकार!" वह नकेल खींच रहा था। चाल वैसे पहले की अपेक्षा बहुत धीमी थी, पर फिर भी मुझको भयभीत करने के लिए काफ़ी थी।

"ताँगेवालों का क्या हाल हुआ होगा।" मैंने बेचैनी प्रकट करते हुए पूछा।

"हुज़ूर, राम ही मालिक है उनका तो। ऐसा दीखता था, जैसे ताँगा उलट गया हो।" उसने नकेल झटकते हुए उत्तर दिया।

"कहीं उन्हें ज़्यादा चोट न आ गई हो।" मेरे दिल में आशंका उठ रही थी।

"हाँ, सरकार! पता भी क्या ?"—उसने सहानुभूति दिखाते हुए कहा।

हम दोनों चाह रहे थे कि साँडनी धीरे-धीरे चले और हम उसे वापस करें, जिससे कि बिछुड़े भाइयों की ख़बर ली जाए। इतने में सामने देखते क्या हैं कि दो भैंसे भागे आ रहे हैं और उनके पीछे हैं लट्ठ लिए हुए १०–१५ आदमी। भैंसे लड़ते-लड़ते हमारे सामने ही आ खड़े हुए। इधर-उधर शोर भी बहुत मच रहा था। साँडनी चौंकी, कान सतर किए, गर्दन आगे फैलाई और अपनी रफ़्तार बढ़ा कर भाग निकली। नकल भी बेकार हो गई। मेरा दम फूलने लगा। मैंने तुरन्त साँडनी के मालिक की दोनों बगलों से हाथ निकाल फ़ुर्ती से उसे कस कर पकड़ लिया।

"रो···को ओ!" मैंने भय से काँपती हुई आवाज़ में कहा उसे और भी ज़ोर से कस लिया।

"मुझे न पकड़िये, काठी का डण्डा पकड़िये।" -वह नकेल खींचने की कोशिश करते हुए बोला; पर उसके शब्द जैसे हवा में उड़ गए। मैंने उसे खींचने में पूरी शक्ति लगा दी। हवा में उड़ता हुआ इतना सुना—"जमे रहिए, बड़ी तेज़ दौड़ रही है।"

मेरे मुँह से काँपते हुए बहुत शब्द निकले---"या···र···रो··· क···इ···से।"

"आज इसे क्या हो गया है?"—साँडनी के मालिक ने पसीना पसीना हो कर नकेल खींचते हुए कहा। साँडनी दौड़ती हुई दूसरे खेत में मुड़ी। नकेल छूट गई। "हा···। ?··? ?···य···म···रे" की आवाज़ मेरे मुँह से निकली। हम दोनों उछल कर एक सरकंडे के ढेर में आ गिरे और साँडनी भाग गई।

मेरी आँखें फिर गईं। मेरे हाथों में जैसे किसी ने लोहे की गिरह लगा दी हो। बड़ी कठिनाई से साँडनी के मालिक ने मुझसे अपनी

को छुड़ाया तथा मुझे सँभालते हुए बोला—"आपने तो गजब कर दिया। चोट तो नहीं लगी कहीं आपको।

"चोट-वोट तो कुछ नहीं लगी।"—मैंने कराहते हुए कहा। पर दरअसल मेरी कमर के नीचे, रीढ़ की हड्डी की जड़ में, बड़ा दर्द था और मिर्च-सी लग रही थी। हम दोनों उठे और अपने को सँभालने लगे।

इसी वक्त सामने देखा कि दोस्तों का ताँगा भागा हुआ आ रहा है। हमें देखकर ताँगा रुका और एक दोस्त ने पूछा कि साँडनी कहाँ गई। सारी कहानी उन्हें बताई तो बजाय सहानुभूति के लगे तालियाँ बजाने और खिलखिला कर हँसने।

"तुम्हारा ताँगा भी तो उलट गया था।"—मैंने ताना मारते हुए कहा।

"उलट तो गया था, पर आज तो बच गई?" ताँगे वाला बोला।

"भला भक्त लोग भी कहीं चोट खाते हैं?" एक मित्र ने कहा, और सब हँस दिये।

"सरकार, भला हुआ कि आप बच गये, पर मेरी साँडनी तो भाग गई।" -उसका मालिक बोला।

"अरे, वह रही।"—सब लोग एक ओर इशारा करके चिल्लाये। साँडनी का मालिक तुरन्त उस तरफ़ को भागा। मेरी कमर में जलन बढ़ती जाती थी। दर्द बड़ा टीस रहा था, पर उनके साथ रहने तथा कहानियाँ सुनाई जाने के कारण सब चुपचाप सह रहा था। आधे घण्टे में ही रास्ता तय कर लिया, और हम शाम के ६ बजे दफ़्तर पहुँच गये।

× × × ×

ताँगे से उतर कर मैं लँगड़ाता और दर्द से कराहता हुआ कार्यालय में घुसा। मैनेजर साहब नीचे टहल रहे थे। मैं उतरा हुआ चेहरा लिए, नाक सिकोड़ लँगड़ाता हुआ उनको नमस्ते करके जाने लगा तो वे बोले—"क्यों, आज तबीयत कुछ खराब है क्या ?"

"हाँ, ज़रा थक गया हूँ।"—कह कर मैं ऊपर अपने कमरे जाने लगा।

"अरे, यह क्या ? तमाम कपड़े खून से तर ! क्या चोट आई है कहीं ?"

पर मैंने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया और अपने कमरे में आ गया। तुरन्त दरवाज़ा भेड़ कर कपड़े उतारे। बनियान से लेकर कोट का नीचे का भाग तक खून से रंग गया था। चूतड़ों पर पतलून कट-फट चुकी थी। शीशा निकाल कर देखा, २-३ इञ्च लम्बा तथा उतना ही चौड़ा घाव था। हाथ लगाया, तो एक गहरी 'आह' निकल गई। गोश्त निकल आया था। अब खून तो नहीं निकल रहा था। एक प्रकार का पानी-सा बह कर आ रहा था। दर्द बहुत ज्यादा बढ़ गया था। कुछ चिरमिराहट भी होने लगी थी। आह !

"हाँ, आ तो गये, मगर खून में सब कपड़े तर हैं।"

नीचे से सुनाई पड़ा, और एक मिनट में मैनेजर के साथ सभी साथी ऊपर आये। दरवाज़ा खोल दिया गया। मैं चादर ओढ़े उलटा पड़ा था।

"क्या ज्यादा चोट आई है ?" मैनेजर साहब ने पूछा।

"साँडनी की सवारी की थी, उसी पर से गिर पड़े ?" एक मित्र ने कहा।

"साँडनी पर से गिर गये !" मैनेजर साहब को और भी आश्चर्य हुआ ।

"हाँ, आह !" मैंने कराहते हुए कहा ।

"आखिर तुम्हें यह सूझा क्या ?" मैनेजर ने सहानुभूति तथा डाट बताने के स्वर में मुझसे कहा ।

"यों ही शौकिया, ओह !"—मैं कराहते हुए दाईं ओर करवट लेकर बोला ।

"अरे दिखाओ तो, कहाँ चोट लगी है ?" कहते हुए मैनेजर साहब आगे बढ़े और मैं शर्माता ही रह गया ।

उन्होंने चादर उठा कर देखा । सभी साथी घाव देख कर घबरा गये ।

"इतना बड़ा घाव !"—मैनेजर भौंचक्के-से रह गये ।

"उफ़ ! रास्ते में बताया भी नहीं ।"—एक साथी ने कहा ।

"यह लगा कैसे ?"—मैनेजर साहब ने पूछा ।

"काठी के डण्डे में शायद कोई तेज़ धार वाली पत्ती लगी थी । उसी से छिल गया ।" मैंने सफ़ाई पेश की ।

"तुम भी अजीब आदमी हो, मालूम भी न हुआ ।

"कुछ चिरमिराहट-सी तो हो रही थी । समझा खाज है कुछ पता ही न चला । मैंने दर्द और शर्म तथा मुस्कान के साथ झेंपते हुए कहा ।

सभी पास बैठे थे । मेरे मन में तरह-तरह की आशङ्काएँ उठ रही थीं । कहीं यह भगन्दर न हो, और सुना है रीढ़ का फोड़ा भी यहीं होता है । राम जाने, क्या रोग है ? डाक्टर भी आ गया और उसने उस घाव को देखा । अब उसे मालूम हुआ कि यह घाव

साँड़नी की सवारी का प्रसाद है, तो वह बड़े ज़ोर से हँसा और बोला –"अब आपके पास सनद हो गई है। अब से आप साँड़नी के माने हुए सवार हैं ?"

मैं झेंप गया, और सभी साथी हँस पड़े।

डाक्टर ड्रेसिङ्ग करके चला गया।

दूसरे-तीसरे दिन डाक्टर आता और मुझे देख जाता। इसी तरह १५-२० दिन में घाव भर गया। आख़िरी दिन डाक्टर पट्टी खोलने आया। पट्टी खोल दी गई। फिर उसने बड़ी गम्भीरता से कहा —"अब आप बिलकुल ठीक हो गये हैं, मगर अभी एक-डेढ़ हफ़्ते बड़े परहेज़ की ज़रूरत है। यहाँ का घाव बड़ा ख़तरनाक होता है।"—उसकी बात सुन सभी उदास से हो गये। हमें उदास देख कर वह बोला– "घबराने की कोई बात नहीं है मगर परहेज़ तो दो हफ़्ते ज़रूर कीजिए।"

"किस चीज़ से परहेज़ डाक्टर साहब ?"—मैंने उत्सुकता से पूछा।

"सिर्फ़ साँड़नी की सवारी से।" वह मुस्कराता हुआ बोला और हम सब खिलखिला कर हँस पड़े।

मैं शर्म से अपनी पलकें कुछ झुका कर धीरे-धीरे मुस्काया और डाक्टर हाथ मिला कर चला गया।

———

परछाईंवादी

एक दिन जी में आया और शौक चर्राया कि बनारस की सैर कर आऊँ। धर्म का धर्म और सैर की सैर--दोनों हाथ लड्डू। इरादा करना था कि अपने दिली दोस्त मि० हुटैटो को साथ ले सुबह के तूफ़ानमेल से सवार हो गए। रात के नशे-पत्ते का सरूर अभी आँखों में ऊँघ ही रहा था कि कानपुर आ गया। यहाँ एक अनोखे सज्जन गाड़ी में चढ़े। मेरे विचारों की लड़ी टूटी और मैं सहसा उनकी ओर आकर्षित हो गया। हुटैटो बड़ा बातूनी आदमी है, उसने कुछ ही सेकण्डों में उन महोदय से परिचय बढ़ा लिया। दोनों की खूब घुल-घुल कर बातें होने लगीं। थोड़ी देर बाद हुटैटो ने मुझसे उनका परिचय कराया। वह बोला, "आप आज कल के एक महान कवि हैं। आपके इन दिनों बड़े हल्ले मचे हुए हैं। सचमुच, तुम्हारे सर की कसम, यह बड़े ज़ोरदार कवि है।" इसके बाद मेरा परिचय कवि जी से देते हुए हुटैटो ने कहा, "आप भी लिखते हैं। आप मेरे दोस्त हैं।"

मेरा परिचय प्राप्त करके कवि जी बोले, "खूब मिले! एक सुप्रसिद्ध कवि और एक लेखक। खूब मिले! कहिये, है न प्रसन्नता का योग?"

"आपके दर्शन करके बड़ा आनन्द हुआ। यह हमारा सौभाग्य है।" मैंने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया।

हुटैटो ने फिर विस्तार से दोनों का परिचय एक दूसरे को दिया, मेरे विषय में उसने कहा, "आप एक कहानी-लेखक हैं। आपकी कहानियाँ बड़ी ज़ोरदार उतरती हैं, और आप आजकल "बरसाती भोंपू" का सम्पादन कर रहे हैं। इसका यह मतलब है कि आप सम्पादक भी हैं।"

"ओहो! आप सम्पादक भी हैं? खूब तब तो आपके अनुरोध पर आपके पत्र में अवश्य लिखा करूँगा और आपका पत्र कितना चमकेगा, यह तो आप स्वयं समझ रखिये।" कवि जी बोले।

"आपने तो बिना अनुरोध के ही कृपा करने की ठान ली, वरना मैं अनुरोध किये बिना न रहता। और अपनों से क्या अनुरोध?" मैंने मुस्करा कर कहा।

"हूँ हूँ हूँ हूँ आप भी," कवि जी कहकर रह गए। उनका परिचय हुटैटो ने मुझे विस्तार-पूर्वक यों दिया—

"आप तो महा महान कवि है ही। आपकी प्रशंसा करना सरासर मूर्खता है। आप परछाईंवादी कवि हैं। देखते नहीं हैं आप कवि जी के ट्रेडमार्क?"

मैं बड़ा चकराया। कवियों की कितनी किस्में सुनी थीं, पर यह परछाईंवादी कौन जन्तु हैं, मैं समझ न सका। मैंने सन्देह दूर करने के लिए पूछा, "क्षमा करें, मैं समझा नहीं। क्या कोई नया वाद चला है।

"हूँ...हूँ...हूँ...हूँ...हूँ" आप भी...अरे भाई, छायावाद को ही परछाईंवाद कहते हैं। छायावाद, परछाईंवाद, सायावाद, रिफ्लेक्शनिज़्म— सब के अर्थ एक ही हैं। सभी में छाया या परछाईं रहती है।" कवि जी आँखें चमका, कन्धा हिला, कमर लचका, बनावटी मधुर मुस्कान से बोले। उनकी फूल-सी कोमल मार, पराग-सी मधुर बहार, बोली अमृत-सी रसदार बड़ी मज़ेदार मालूम हुई।

उनकी वेश-भूषा ने मुझे मोहित कर लिया। हाँ, तो उनके बाल काले घुँघराले, लच्छेदार। दर्शक एक बार उनमें फँस कर जीवन भर निकल नहीं सकता। लाख हाथ-पैर मारे, सिर पटके, हज़ार कोशिश करे सब बेकार। कवि जी के मुँह का मैदान साफ़ टेनिस-कोर्ट जैसा और संगमरमर-सा चिकना—नज़र के भी पैर रपट जायँ। आँखों पर चश्मा, गर्दन लागिमाल ईश्वर की बारीकी की तारीफ़ करनी पड़ती।

कमर उर्दू के शायरों की-सी लचकदार, बड़ी बारीक। रेशम का कुर्त्ता, जिसमें बिना हवा ही लाखों लहरियाँ उठकर उनके दिल को गुदगुदा दें। आवाज़ बड़ी कोमल, करुण रसीली। उनके हाथ-पैर देख कर मुझे बार-बार अपने 'चेस्ट ऐक्सपेण्डर' की याद आ रही थी और हाँ, एक बात और भी अनोखी थी। उनका सीना कमर की तरफ़ निकला हुआ मालूम होता था।

परिचय के पश्चात् हुटैटो ने उनसे कुछ सुनाने की प्रार्थना की। पहले तो उन्होंने काफ़ी नाज़-नख़रे दिखाये, फिर जल्दी ही तैयार हो गए। वह कहने लगे, "आप जानते हैं, आजकल छायावाद के नाम पर बड़ा अनर्थ हो रहा है। कितने ही तुक्कड़ भी अपने को छायावादी कहने में नहीं हिचकते। कविता सुकुमारी ऐसे तुक्कड़ों

पनाह माँगती है। ख़ैर, आप मेरी रचनाएँ सुन कर आनन्द-विभोर हो जायँगे, आपको अवश्य ही अनुभूति होने लगेगी।"

"हाँ-हाँ! कविता तो इसी का नाम है। सुनाइये न, कविवर। मैं बड़ा आतुर हो उठा हूँ। शीघ्र ही कोई रचना सुनाकर आनन्द-विभोर कर दें और अनुभूति करा दें तो फिर क्या कहना।" हुटैटो ने बड़े ही आवेश-पूर्ण लहजे में कहा।

"आपकी गुण-ग्राहकता और कविता के प्रति प्रेम देख कर हृदय गद्‌गद्‌ हो जाता है। आपको तो [illegible] सुनाऊँगा। अपने जीवन की साधना के कुछ झिलमिल [illegible] आपके सम्मुख रखूँगा। अच्छा सुनिये—

"मेरे सस्मित आँगन में,
बजती स्वप्निल पैजनियाँ।
सुन स्वप्न परी-सी हँसती,
मेरी भावुक आँगनियाँ।
उस निर्मम का प्यार...
हा! मिल सका न मुझको दो भी पल।
इसीलिए करती हैं आँखें छलछल कलकल।
क्या खिल सकती हैं—
कभी हृदय की पंखड़ियाँ?
रोती अतीत की घड़ियाँ—
बन गई मुझे हथकड़ियाँ।

ख़ूब! ख़ूब! एक बार और। उफ़! मेरे करुणा के कवि, ग़ज़ब की चीज़ है। एक बार और। कमाल कर दिया।" हुटैटो बोला और कवि जी करुणा-हास्य से कटाक्ष करते हुए रह गए। मैं कुछ न समझा। भौंचक्का सा रह गया। अपनी ही नासमझी को

धिकारा—"भाई यह तो कवि हैं, बहक भी निकलेगी तो कविता ही होगी। समझने के लिए अक्ल चाहिए।"

छुटैटो उन पर मुग्ध था, सचमुच या बनाने के लिए, कहा नहीं जा सकता। डिब्बे के सारे आदमी उनकी ओर अरमान भरी दृष्टि से देख रहे थे। उन्होंने वह गज़ब के स्वर निकाले कि सब धान पाँच पसेरी कर दिये। मैंने, इसलिये कि कहीं मूर्ख न समझा जाऊँ, बनावटी मुस्कराहट से कहा, "ख़ूब कविता है। अमर रचना सी मालूम होती है। आपने कमाल ही तो कर दिया। छायावाद में अध्यात्मवाद का पालिश और राष्ट्रीयता का रंग है, वह केवल मैंने यहीं देखा है। "हथकड़ियों" में राष्ट्र की आत्मा झनझना उठी है।"

वह कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए बोले, "आपकी कृपा है पर आप को कौतूहल होगा कि यह छन्द कौन सा है। हम छायावादी नवीन कवि छन्द-बन्द के इस फन्द में नहीं पड़ते। छन्द क्या, जो मुँह से निकला, वही कविता। छन्द तो तुक्कड़ों के लिए हैं।"

मैंने अपने को दिल-भर कोसा। व्यर्थ अब तक छन्द के चक्कर में दिन खोये। ख़ैर उनसे बोला, "ठीक ही है, कविवर। कवि के मुँह से जो गिरे वही कविता। हमारे नगर में एक कवि रहते थे, सच, आप के सर की कसम, वह कविता में छींकते, कविता में ही कान खुजलाते और कविता में ही जम्हाई-उबकाई लेते थे। उनकी हर एक हरकत हृदय छूनेवाली होती थी। यही है सच्ची कविता"।

"निश्चय ही। कवि की माया अपार, उसका किसी ने न पाया पार, आज तक सबकी कोशिश रही बेकार, और यही मुझे भी

माननी पड़ती है हार। क्यों, है न मेरे सरकार ?" हुटैटो ने कहा।

मैं बोला, "वाकई आप तो गज़ब का लिख देते हैं। हम साधारण व्यक्ति तो यह सोच भी नहीं सकते जो आप बिना सोचे समझे कह जाते हैं। आपने, हूँ" हूँ…हु…हूँ…हूँ, आप बुरा न मानें, अनोखी प्रतिभा पाई है।"

"आप हैं सच्चे पारखी। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण और दृष्टि अन्तर्भेदी है, आपका अध्ययन अनन्त है।" कविजी बोले।

मैं फूला न समाया, अभी तक तो मैं अपने को धिक्कार रहा था पर कवि जी की सनद पाकर अपनी मूर्खता, नासमझी और अयोग्यता को भूल, अपने को पाँच सवारों में गिनने लगा और बोला, "तब तो और भी कुछ सुनाइये, भगवन् सच, हमें अत्यन्त महान तथा बड़े से बड़ा परमानन्द प्राप्त हुआ है। अनुभूति होते-होते बाल-बाल बच गई। अब की बार ज़रूर हो जायगी। कुछ सुनाइये न, अच्छे कविवर। बस, अनुभूति बड़ी उतावली हो रही है।"

"सुनाता हूँ," कहकर उन्होंने नफ़ीरी को लज्जित करनेवाली भिनभिनाती आवाज़ में फिर गाना शुरू किया—

बिखर पड़ी मेरी मधुमास।
मेरे उर की व्यर्थ व्यथाएँ,
कमल-पत्र की करुण कथाएँ,
उर-आशाएँ
अभिलाषाएँ
बन गईं सभी निश्वास !

कविता सुनते ही हुटैटो माथा ठोक कर बोला, "वाह ! वाह ! कमाल कर दिया। क्या खूब आशाएँ और अभिलाषाएँ निश्वास

बन गईं। फिर इस बन्दी-जीवन में रह ही क्या गया। कितना रोदन है और रेल-रोदन ! हाय री करुण कथाएँ।"

कविजी की आँखें आँसुओं से लबालब थीं और हम सुनकर गद्-गद् हो रहे थे। एक सज्जन पास ही बैठे थे, बोल उठे, "क्यों कविवर जी, मास तो पुल्लिङ्ग है ? आपने 'मेरी' कहा है।"

"ठीक है, मधुरता स्त्रियों में ही अधिक होती है। मधुमास को पुल्लिङ्ग लिखना, मधुरता की हत्या करना है। कहा भी है—मेरी प्रभात—कविजी ने समझाया।

हुटैटो से न रहा गया, वह एकदम गर्म होकर बोला, "सुनिए महाशय, छायावादी किसी कानून को मानने के लिए तैयार नहीं। पुराने खुर्राटों के लिए हैं ये लचर कानून। हम नवयुवक किसी प्रकार भी व्याकरण के इस वितण्डावाद में फँस कर जीवन व्यर्थ नहीं करना चाहते। हम, जनाब, छायावादी हैं, कोई मज़ाक नहीं। हम सब प्रकार स्वतन्त्र हैं, समझे महाशय ! देखते नहीं, कविवर जी ने स्वयं मधुरता को प्रकट करने के लिए कठोरता के वे पुराने निशान—मुँह की घास-फूँस—साफ़ करा दिए हैं। तभी तो आप मधुरता की देवी बनी हुई हैं। आज से समझ लीजिए। बस।"

"आप तो गर्म होने लगे। पूछने में क्या हर्ज है ?" वह सकपकाने-से होकर बोले।

"हाँ, आपका सन्देह ठीक है। अब तो समाधान हो गया न। पुराने समय के हैं आप के विचार। अब तो समय बहुत आगे बढ़ गया है। नवीन साहित्य का निर्माण हो रहा है, नवीन अभिव्यक्ति, विवेचना, समीक्षा हो रही है। काव्य ने करवट ली है। मालूम होता है, नवीन जागरण का आप को कम ज्ञान है, क्षमा करें !" कविजी ने कटाक्ष करते हुए हल्की-सी मीठी-मीठी मुसकान

के साथ कहा।

एक अन्य सज्जन ने साहस बटोर कर कहा, "अपराध क्षमा हो। मैं आप की कविता का अर्थ नहीं समझा। कृपया समझाइये, मुझे भी कुछ।"

"हूँ . हूँ.. हूँ . हूँ. . ! भाई, ये कविताएँ कला की दृष्टि से लिखी गई हैं, अर्थ की दृष्टि से नहीं। अर्थ-वर्थ के चक्कर में पड़ना व्यर्थ है। यह तो आत्मानुभूति की चीजें हैं।" कविजी ने बड़े नाज के साथ उत्तर दिया।

हुटैटो ने समझाना शुरू किया, "महाशयजी, ये कविताएँ न तो आर्य्यसमाज के भजन हैं और न बारहमासा, जो समझ में आ जाएँ। ये तो कला की मर्कत-मणियाँ हैं, जिन में कल्पना-परी मौन नृत्य करती है। ये तो वह स्वप्न-प्रासाद हैं, जिनमें कला-परी विलास की अँगड़ाइयाँ लेती हुई सहृदयों को अपने कटाक्ष-बाणों से बेधती रहती है। इनका अर्थ समझना मज़ाक नहीं। आप तो क्या समझेंगे, स्वयं कविजन ही इनका अर्थ समझने में असमर्थ हैं। भाई, आप बड़े पुराने विचार के हैं। मेरी ही कविता है, लो समझ लो तो जानें—

बरस रही है वर्षा रिमझिम,
अलस अँधेरी रात!
हाय! हाय! संध्या के घर में,
आकर घुसा प्रभात!
शोक का जलता दावानल,
और तुम्हारे उर में बजती परियों की पायल!
निगोड़े और तुम्हारा प्यार
बना मादक मानस को भार!

संयम का सरदार छोड़ कर
भाग गया हथियार !
वियोगिन देख रही मन मार, किया निष्ठुर ने कितना छल !
अरे वह निष्ठुर कब आवेगा ?
जो चला गया है सिन्धु-पार
उठ री वियोगिनी बाले !
उठ तो चूल्हा दहका ले !
वह तुझे प्राण परसों सरसों का शुद्ध तेल लावेगा।"

मैं अपनी हँसी न दबा सका। कोशिश करने पर भी कहकहा निकल गया। फिर भी मैंने सँभल कर कहा, "हुटैटो, तुमने गजब कर दिया। बड़े छिपे रुस्तम निकले। कविता में इतनी पहुँच पैदा कर ली और हमें आज तक खबर न हुई।"

"खूब ! और भी एक-आध" कविजी ने कहा।

हुटैटो ने बड़ी कृतज्ञता प्रकाशित की और फिर अपनी दूसरी कविता सुनानी शुरू की—

"मुझे तुम करते थे अति प्यार—
एक कर बैठे मोहक चूक।
चुरा ले गये समझ कर हृदय—
पुराने कपड़ों का सन्दूक।
आज भी याद मुझे है प्राण,
तुम्हारे निष्ठुर मादक खेल।
हृदय में कोल्हू-सा चल रहा,
निकलता है नैनों से तेल।
सह सकेगा कैसे उर हाय,
तुम्हारी अवहेला की चोट।

लग रही है मानस में आग–
और यह कशमीरे का कोट।
स्वर्गमय स्वप्निल चादर तार–
सो रही थी मैं प्रेम-विभोर।
न घर में कत्था, चूना, पान–
घुस गये सो भी निष्ठुर चोर।
अन्त में चले गये मन मार
मुझे तुम करते थे अति प्यार!"

हम सब ने मिलकर हुटैटो को दाद दी। कविजी मुस्कराते हुए बोले, "देखिए, यह है असली छायावाद। कितनी सादी शब्दावली है और कितने गूढ़ भाव। वाक़ई, आपकी कविता में खूब पहुँच है।"

"यानी कबीर इससे ज़्यादा क्या कह सके हैं। पीछे रह गये अर...र...र...कबीर।" मैंने बहुत ही गम्भीर भाव से कहा।

इतने ही में उनका स्टेशन आ गया। वे बड़ी लचक-मचक के साथ गाड़ी से उतरे।

"आज कितना अच्छा सत्संग रहा। हम कितने सौभाग्य-शाली हैं। कविजी कभी-कभी हमको स्मरण कर लिया करें!" हुटैटो ने खिड़की पर खड़े होकर बड़ी करुण ध्वनि से कहा।

"आप भी भूलियेगा नहीं! प्रयत्न करूँगा कि यह स्नेह-सम्बन्ध बना रहे। आपसे बिछुड़ते हुए दिल टूट रहा है।" कवि जी ने उत्तर दिया।

"और हुटैटो तो कविता करके आपके वियोग को अमर कर लेगा, और चैन पावेगा, पर हम जैसे जनों की क्या दशा होगी!" मैंने कहा और कवि जी हँस-भर दिये। इतने में गाड़ी चलदी और कवि जी हमारा प्रणाम स्वीकार कर चलते बने।

प्रथम मिलन

इसमें तनिक भी शक नहीं कि पिताजी ने मुझ पर बड़ी दया की है, मुझे किसी न किसी प्रकार मैट्रिक पास करा दिया और कालेज में ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी दाखिल कराया। इसके साथ ही मुझे इतनी कसरत कराई कि मैं एक हट्टा-कट्टा आदमी बन गया, यह भी उनके अनुग्रह का फल है। इन दोनों बातों के लिए मैं सदा उनका गुण-गान करता रहूँगा, उनका अहसान बयान करता रहूँगा, लेकिन मेरा विवाह करके उन्होंने कौन-सा भला सोचा, सो मैं आज तक न जान सका। इस समय जब कि मैं एक कामयाब पति हूँ और मेरी श्रीमती जी "सुनते नहीं? मुन्नी के बाबू जी" कह कर मुझे शर्मा दिया करती हैं, मैं विवाह के मामले में पिता जी का कृतज्ञ, तो कम से कम, नहीं हो सकता।

विवाह से मैं इसी प्रकार दुम दबाकर भागा करता था, जिस प्रकार शहर के लावड़ कुत्तों से गीदड़ डर कर भागा करता है।

कसरती जीवन में विवाह ! राम-राम ! इससे तो बस पनाह !! हम सीधे-सादे जीव— दुनिया के रङ्ग-राग से अपने राम वैसे ही कोसों दूर रहने वाले । लेकिन जिस चीज़ से आदमी जितना बच कर भागने का प्रयत्न करेगा, वह चीज़ उतना ही उसको चिपटेगी । यही हमारे साथ बीती । पिताजी ने इस अनुभव-हीन पहलवान कसरती जवान की शादी का मुहूर्त तय कर डाला ।

बचने का उपाय जब नज़र नहीं आता तो आदमी विवश होकर अपने को समय के अनुसार बनाने का प्रयत्न करता है । यही मैंने भी करने का प्रयत्न किया । विवाह तो होगा ही । राजा दशरथ की बात ही रहेगी, चाहे राम वन-वन मारे-मारे फिरें । इसलिए अपने को ही इस योग्य क्यों न बना लिया जाय कि विवाह भार या बवाल न बने । मैं अपने को सफल पति ही साबित करके क्यों न दिखा दूँ । इस सम्बन्ध में मैंने भारतीय तथा विदेशी अनेक विद्वानों की पुस्तकें भी पढ़ डालीं । जंगली पशु तक शिकार करने से पहले ही अपने नाखून तथा दाँत तेज़ कर लेते हैं, हम तो पढ़े-लिखे नये रक्त वाले मनुष्य हैं । क्यों न पहले ही सब प्रकार से तैयार हो जाना चाहिए । यही सोच कर विवाह के सम्बन्ध में मैंने बहुत विस्तृत अध्ययन भी कर डाला ।

आखिर एक दिन वह दुर्घटना घट ही तो गई यानी मेरा विवाह हो गया और मेरी वे हमारे घर तशरीफ़ ले आईं । अब तो परीक्षा का समय निकट क्या, बिल्कुल सिर पर खड़ा था । इसी रात को भविष्य-जीवन की सफलता-असफलता की भविष्य-वाणी हो जायगी ! 'सब लोग बरात की थकान उतारने में लगे, घर की स्त्रियाँ नई बहू को पाकर नाचने-गाने, आनन्द-उत्सव मनाने और उछल-कूद मचाने में लगीं और मेरे दिमाग़ में प्रथम मिलन की

सफलता के स्वप्नों और असफलता की आशंकाओं से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नताएँ तथा उदासियाँ उछल-कूद मचाने लगीं।

खैर, मैंने धड़कते हृदय और काँपते हुए कलेजे से अलमारी खोली और The Successful Husband (सफल पति) नामक पुस्तक निकाली। और उसको पढ़ना प्रारम्भ किया। किताबें ही तो आड़े वक्त में, पढ़े-लिखों का सहारा हैं। अगर कुश्ती का मामला होता तो मैं रात भर पैर पसार कर सोता और कुश्ती के समय तक ऊँघता रहता, फिर भी अखाड़े में आते ही प्रतिपक्षी को न पछाड़ता तो मेरा नाम नहीं। यह न तो अखाड़ा था और न हाथापाई का दंगल। यह प्रथम-मिलन की रात थी, जिसका अपने को इस से पहले बिल्कुल भी कोई अनुभव न था। खैर, पुस्तक निकाली और पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था—'प्रथम-मिलन' ही जीवन के भविष्य की भूमिका है। इसलिए 'प्रथम-मिलन' में जितनी भी समझदारी दिखाई जा सके, कम है। नव वधू नये घर में आती है, वह बहुत लजाती है, इसलिए बहुत मधुर शब्दों में, प्यार भरे सम्बोधनों के साथ सरस भाषा, सुकुमार वाणी और मुस्काती पुतलियों से उसके कमरे में प्रवेश करना चाहिए।

उदाहरण के तौर पर उसमें लिखा था कि 'नववधू से इस प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ किया जा सकता है—कहिये आपके सुकुमार शरीर को यहाँ आने में कष्ट तो नहीं हुआ? आप प्रसन्न तो हैं.........तुम मेरे स्वप्नों की साकार मूर्ति, मैंने कितनी उत्कण्ठा से तुम्हारे श्री चरणों की प्रतीक्षा की है।...... मालूम होता है रुष्ट हो.........मेरी कल्पना! ओह तुम मेरे मानस की मंजु मराली! ... इसी प्रकार बहुत कुछ!'

उस पुस्तक का "The First Night" (प्रथम रात) नामक

प्रथम अध्याय मैं बड़े ध्यान से पढ़ गया और कितनी ही बातों पर मैंने लाल पेंसिल से निशान भी लगा लिए—कितनी ही बातें अपने दिल में भी बैठा लीं।

पढ़ते-पढ़ते शाम हो चली। मैंने अपने को प्रथम मिलन के मैदान में सफल वीर साबित करने के लिए काफ़ी सामग्री एकत्र करली। अभी सात बजे होंगे और १०–११ से पहले तो 'उन' के कमरे की ओर झाँकने की भी शास्त्र आज्ञा नहीं देते। ठीक ४ घण्टे हैं! मैंने एक कागज़ निकाला और बड़ी सुन्दर भाषा में कुछ सम्बोधन, कुछ परिचयात्मक वाक्य लिख लिए और उन को स्मरण करने लगा। देखता हूँ, उनमें से मैं बहुत कुछ याद कर ले गया हूँ! अब तो मेरी प्रसन्नता का वार-पार न रहा। मैं उछल पड़ा और लेखक को मैंने सैकड़ों हार्दिक गुमसुम धन्यवाद दिये! पुस्तक को मैंने सँभाल कर बड़ी श्रद्धा के साथ अलमारी में रख दिया। कुछ देर जागती आँखों में प्रथम मिलन के लजीले चित्र उतारता रहा और दिल ही दिल में अपनी लिखी लच्छेदार भाषा दोहराता रहा।

खा-पी-कर सब घर वाले सोने लगे। दिन-भर के थके हुए जो थे। मैं विशेष नहीं थका था, इसके सिवा, यह पुस्तक में लिखा नहीं लिखा था कि बारात वापस आने के उसी दिन प्रथम भेंट करनी चाहिये या दूसरे दिन। प्रथम मिलन का तो यही अर्थ है कि पहले ही दिन। इसलिए मैं भला किस प्रकार सो सकता था। ख़ैर, पुराने समय के ११ बज गये और मैंने देखा, ऊपर दुमंज़ले पर मेरे कमरे में रोशनी हो रही है। वे जाग रही हैं—मेरी प्रतीक्षा में! अहा जी अहा! मैं प्रसन्नता से नाच उठा और मौक़ा पाकर—जागने वालों की आँख बचा कर—धीरे-धीरे ऊपर चढ़ गया।

कमरे में घुसने लगा तो दिल 'धक-धक' करने लगा। जो कुछ याद किया था, सब भूल गया! काँपती हुई पिण्डलियों से मैंने कमरे में प्रवेश किया! 'हनुमान-चालीसा' की दो-चार चौपाइयों का पाठ किया, इष्ट देव को मना, गायत्री का जाप कर मैं बिल्कुल अन्दर चला गया। ज्योंही मैं अन्दर गया कि वे मुँह फेर कर पलँग के पास खड़ी हो गईं!

मैं धीरे-धीरे सक्सेसफुल हस्बेण्ड की बातों को स्मरण करता, मुस्कराने का प्रयत्न करता हुआ, आगे बढ़ा। पुस्तक की बात याद आ गई। उनमें लिखा था कि सर्व-प्रथम सुकुमार स्वर और मधुर वाणी में नववधू की कुशल पूछ कर फिर नया प्रसंग छेड़ना चाहिए। मैं कुछ कहने के लिए आगे बढ़ा और ज्योंही कुछ कहना चाहता था कि मेरा गला सूख गया! जबान तालू से लग गई, मानो कई दिन का प्यासा हूँ।

कसरती आदमी होने के कारण हनुमान जी पर मेरी आस्था है। ऐसे समय उन्हीं का आसरा लिया जा सकता था। फ़ौरन हनुमान-चालीसा की चौपाइयों का जाप करना शुरू किया—

जय हनुमान ज्ञान गुण सागर,
जय कपीश चहुँ लोक उजागर,
महावीर विक्रम बजरंगी,
कुमति निवार सुमति के संगी,
महावीर जब नाम सुनावै,
भूत पिशाच निकट नहीं आवै।

लेकिन दिल की धड़कन तेज होती गई। हनुमान-चालीसा, जो कुश्ती से दो-चार मिनट पहले पूरे का पूरा जप जाया करता था, यहाँ सारा का सारा भूल गया। हाय क्या करूँ! इस आंधे

वक्त में हनुमान जी ने भी आँखें फेर लीं! करते भी क्या बेचारे हनुमान जी भी। वे तो ब्रह्मचारी ठहरे। विवाह के मामले में में उनकी सहायता बेकार है। कतई कोरे और नातजर्बेकार।

एक बात याद आ गई—नीबू का नाम मुँह में पानी पैदा करता है। तुरन्त कल्पना की कि हमारी "वे" ही हमें खुद अपने हाथों से, और मुस्काते हुए, काली मिर्च और नमक डाल कर बढ़िया नीबू काटकर चुसा रही हैं! कल्पना करनी थी कि मुँह तर हो गया और मैंने तुरन्त साहस करके मधुर वाणी और सुकुमार शब्दों में परिचयात्मक वार्तालाप करना आरम्भ किया; लेकिन पुस्तक की भाषा भूल गया। जाने भी दो। पुस्तक की बातें भूल गया तो क्या हुआ। क्या मैं खुद नयी बातचीत नहीं कर सकता! जो होगा, देखा जायगा। आज तो बिल्कुल मौलिक वार्तालाप ही होना चाहिए, मैंने कहा "कहिए आपकी तन्दुरुस्ती तो ठीक है! यहाँ आने में हाज़मा तो नहीं बिगड़ा।" मैं हिम्मत करके, धड़कते दिल से कह गया।

मेरी बात सुनते ही वह कुछ सकुचाई-लजाई-सी और मैंने और भी साहस किया कि अपना दाँया हाथ उसके बाँये कन्धे पर रख कर सामने खड़ा हो गया, उसने लजीली हल्की मुस्कान से ज़रा पलकें उठाईं और फिर गिरालीं। मै बड़ा प्रसन्न हुआ। पर सोचा, आगे बातें कैसे चलाऊँ, मुझे याद आ गया और मैंने बोलना प्रारम्भ किया—

"प्रिये, तुम प्रिये, तुम मेरे हृदय की प्रिये ......हो, सच मानना तुम मुझे बड़ी प्रिय हो। तुम मेरे हृदय की प्रिये, रानी ही हो। मुझे तुम से इतना ही प्यार है जितना मुझे अपनी मालिश के लिए सरसों के तेल से! मै "प्रिये!" मैं एक साँस में कह गया!

"आपकी ···· दया·· ···" अस्फुट शब्दों में वह बोली ! लेकिन मैं एकदम सँभला !

"खड़े-खड़े पैर में गोच आ जायगी। यदि खड़े-खड़े दर्द हो गया हो तो मालिश कर दूँ !"

"आप ऐसी बात कहते हैं !" उसने शर्मा कर कहा। मैं घबराया - शायद मैं ग़लत बोल गया। उफ़ ! मालिश और सरसों के तेल की बात सुनकर यह क्या कहेगी ? लेकिन इस घबराहट में मुझे अपनी लिखी भाषा याद आ गई और मैंने एक साँस में कह डाला--मेरी कल्पना, मेरी तस्वीर ! ओह तुम मेरे स्वप्न में मिठास ! ओह मेरी चीनी ! तुम बादाम के शर्बत की तरह निर्मल और नींद की तरह मस्त ! सच प्रिये, तुम पता नहीं क्या-क्या हो ! सोचा तो न जाने तुम्हें क्या क्या था; पर ·· ! तुम प्रिये !"

वह कुछ भी न बोली।

"नहीं, नहीं मेरा मतलब ! मेरा मतलब यह है। ··· मेरा मतलब आप समझा नहीं, आप बुरा तो नहीं मान गई ? मेरा मतलब था कि खड़े-खड़े पैर थक जायेंगे।" मैं विनय, आतुरता, घबराहट और मुस्कान के साथ बोला।

"पहले आप बैठें।" कह कर उसने मुझे बैठा दिया। दोनों पास-पास बैठ गये। मुझे बिल्कुल हिम्मत हो गई। मैंने कहना शुरू किया, "तुम मेरी कल्पना की पहरेदार हो, मेरे दिल की चाबी हो ! तुम्हारी प्रतीक्षा मैं इस प्रकार करता रहा हूँ, जिस प्रकार अखाड़े में प्रतिपक्षी की करता रहता था। आज तुम्हें पाकर मैंने सचमुच बहुत कुछ पाया ! शब्द याद नहीं आते कि · " मैं फ़ौरन ठहरा, अरे कहीं [illegible]जी यह न समझें कि याद किये हुए शब्द हैं। लेकिन वह मृदुल भली पतिव्रता नारी ऐसा सोच भी नहीं सकती

थी ! उसने कहा, "यह सब मेरा सौभाग्य है।"

वैसे वह बहुत अच्छी लग रही थी, पर बोलती बहुत कम थी। एक वाक्य बोला कि समाप्त और यहाँ फिर लेकचर देना पड़ता था। सो भी तुरन्त बिना तैयारी के। सब से बड़ी मुसीबत यह थी कि मैं न कभी डिबेटर रहा, न कवि। इसके अतिरिक्त जो कुछ याद किया था, वह बोल ही चुका था और रहा-सहा दिमाग़ से ऐसा साफ़ हो गया था कि जैसे आजकल युवकों के मुखों से दाढ़ी-मूँछें ! रात अभी सारी की सारी बाकी थी ! साढ़े बारह कठिनता से होंगे !

उसका वाक्य था, "मेरा सौभाग्य है" इसका उत्तर मैं सोच ही रहा था कि "वे" बोलीं, "कोई आ रहा है !" और कहते ही सहम गईं, सुकड़ गईं और एकदम सिमट-सी गईं !

"कौन है ?" बात-चीत का सिलसिला कुछ बदला और हमने देखा, कमबख्त महरी अपने पोपले मुँह से जुगाली करती हुई कमरे की ओर ही आ रही है।

"अच्छा बहूरानी अभी जाग रही हैं। नींद नहीं आ रही है।" वह पिचके हुए मुख से मुस्काती हुई दरवाज़े के ऐन सामने खड़ी हो गई।

महरी की बात का श्रीमतीजी ने कोई उत्तर न दिया और सभी मुँह को अँचल से ढाँप लिया। वह लजीली मुस्कान भरी बाँकी चितवन से मेरी ओर देखने लगी। मैं घबराया कि कहीं वह मूर्ख महरी अन्दर न आ जाय। मैंने श्रीमतीजी को संकेत किया कि इसे टालो और "वे" ऐसी लजाईं कि कुछ बोलना ही [illegible]।

"छोटे बबुआ सो गए क्या ?" महरी ने फिर पूछा और मैंने

संकेत से श्रीमतीजी से कहा कि टालो इसे। श्रीमती जी लजा कर मेरी ओर देखती हुई बोलीं, "हाँ" और मैं सुनते ही पलँग पर सोने का बहाना करके लेट गया। उस कमबख्त महरी की नालायकी और नासमझी पर बड़ा क्रोध आ रहा था। कमबख्त बुढ़िया हो चली, लेकिन इसको ज़रा भी तमीज़ नहीं। ऐसे मौक़ों पर तो अगर इधर का कोई काम भी निकलता है तो बड़े-बूढ़े उसे टाल जाया करते हैं और यह बेवकूफ ऐन कमरे के सामने ही आ जमी।

पड़े पड़े इतना क्रोध आ रहा था कि अभी उठकर इसकी कमान सी कमर पर दो लात जमाऊँ! लेकिन 'सक्सेसफुल हस्बैण्ड में' कहीं भी ऐसा प्रसंग नहीं आया कि अगर ऐसे मौकों पर महरी आजाय तो उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। उसे मारा-पीटा जाय, या डाट-डपट भर दिया जाय—उस की मूर्खता को हँस कर तो कम से कम टाला नहीं जा सकता। मैं पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ गया था, लेकिन परिशिष्ट छोड़ गया था। महरी की घटना से दिल में बड़ा पछताया—शायद परिशिष्ट में ही यह दिया हो। मैं बड़े असमंजस में पड़ा कि पता नहीं 'सक्सेसफुल हस्बैण्ड' के अनुसार महरी पर क्रोध करना चाहिए था नहीं।

उधर महरी दो चार मिनट बात-चीत करने में लगी रही और इधर मेरा दिमाग 'सक्सेसफुल हस्बैण्ड में चक्कर काट गया। पूरी पुस्तक एक प्रकार से दोहरा ली और फ़ौरन एक बात याद आ गई। 'प्रथम मिलन' में भेंट आदि की बात भी कही गई थी। उसमें लिखा था कि पहली बार मिलने पर पत्नी के लिए कुछ भेंट अवश्य ले जानी चाहिए। यदि स्मरण न रहे या न ले जा सकने की

अवस्था में हो तो पत्नी की पसंद को मौका भी मिल सकता है।

पुस्तक में यह भी लिखा था कि मौसमी फल इत्यादि प्रथम मिलन में भेंट के लिए ले जाना ठीक है। इससे कुछ समय का आनन्दमय उपयोग भी हो सकता है। हाँ, मुझे याद आ गया, कमरे में प्रवेश करते ही मैंने फल आदि एक ओर रख दिये थे। महरी के आने से यह लाभ अवश्य हुआ कि मुझे उसके चले जाने के बाद बात का नया प्रसंग चलाने का सुभीता हो गया। वह न आती तो बात-चीत में मैं शायद पिछड़ जाता। अब सफलतापूर्वक रात व्यतीत करने की आशा बँध गई। कमरे में घुसते ही मेरी वह दशा थी कि पिण्डलियाँ काँप रही थीं। अब मेरी वह दशा थी कि रात भर बात-चीत करता रहूँ और अपनी "उनको" अपनी तरफ ऐसा आकर्षित करूँ, वह सोने का नाम न लें।

आखिर महरी चली गई! पर मैंने करवटें तक न ली।

"सो गये क्या!" धीरे से वे बोलीं। मैं फिर भी चुप रहा।

"बड़े वैसे हैं, सो भी गये!" वह फिर बोली और मैं सुनकर भी पड़ा रहा!

"नाराज़ हो गये! क्षमा करें।!" कह कर उसने मेरा शरीर छुआ! और मैं रोमांचित हो गया। अहा! वे मुझे इतना प्यार करती हैं! मैं जैसे धीरे से जागता-सा उठा!

"बड़ी नींद आई। कमबख्त महरी चली गई! बड़ी खूसट है।" मैंने कहा।

"आप तो सो ही गये थे। माफ़ करना मैंने जगा लिया!" वह शर्मीली मुस्कान के साथ बोली और मैं बिल्कुल चेतन होकर बैठ गया।

"प्रिये तुम्हारे लिए तो मैं कुश्ती लड़ने के बाद वाली नींद से भी जाग सकता हूँ, तुम्हारे लिए कसरत करने के बाद मालिश भी छोड़ कर आ सकता हूँ !" मैंने अपना प्यार दिखाते हुए कहा ।

"आप की दया है, दासी के लिए इतना त्याग ।" वह बोली और मुझे फलों की याद आ गई ।

"हाँ, रात अभी काफ़ी बाकी है—दो-चार फल ही खाइये !" कह कर, मैंने सामने मेज़ पर रखी हुई कण्डी उठाई ।

"उहूँ !" उसने संकोच किया ।

"खाइये भी"—मैं

"ना !"—वह ।

"लिखा है"—मैं कहते कहते रुका । किताब का नाम मुँह से न निकला, यही शुक्र था । मैं फिर सँभल गया—

"हाँ, कहते हैं और लिखा भी है कि मौसमी फल ज़रूर खाने चाहिए । अंग्रेज़ लोग भी मौसमी फलों की बड़ी तारीफ़ किया करते हैं ।" कहते हुए मैंने कण्डी खोलना शुरू किया ।

"कुछ फल ले आये मालूम होते हैं ।" वह मुस्काकर पास बैठ गई ।

"हाँ," मैं फल निकालते हुए बोला ।

"क्या—क्या ?" उसने पूछा ।

"सिंघाड़े !" कह कर मैंने कुछ हरे-हरे दुधिया सिंघाड़े उसके सामने रख दिये । वह लजाती, सकुचाती, मुस्काती हुई आँखों से मेरी तरफ़ देखती की देखती रह गई ।

"इतना तकल्लुफ़ ! खाओ न हरे-हरे दुधिया मुलायम सिंघाड़े । खाओ न, मौसमी फल हैं ।" मैंने प्रेम भरे अनुरोध से कहा ।

"और अंग्रेज़ लोग इनकी भी बड़ी तारीफ़ किया करते हैं क्या ?" वह मज़ाक करती हुई बोली और इतने में मैंने करीब एक पाव सिंघाड़े सामने रख दिये।

"अच्छा, मैं छीलता हूँ !" कह कर मैंने चटपट दो-तीन सिंघाड़े छील डाले।

"सर्दी की रात और सिंघाड़ा। सर्दी लग जायगी।" उसने विनय तथा प्रेम से इंकार किया।

"ओह ! ठीक ! लेकिन इस कण्डी में और भी फल हैं, जो गर्मी पैदा कर देंगे।"

"वे भी मौसमी हैं न !" उसने कहा।

"हाँ, हाँ, अभी निकालता हूँ !" कह कर मैंने कुछ अखरोट और बादाम निकाल कर मेज़ पर रखे। लेकिन इनको तोड़ने का सवाल था। और शायद इसीलिए वह बेहद लजीली और . स्वभाव को होने पर भी हँस पड़ी।

"ओह, तुम हँसती हो कि ये टूटेंगे कैसे ! सच, कागज़ी बादाम हैं। लो तोड़ कर देखो न !" मैंने एक दो बादाम उस की ओर बढ़ा दिये।

"उहुँ !" कह कर उसने मुँह फेर लिया।

"लो भी—खैर कोई बात नहीं। मैं स्वयं ही तोड़े देता हूँ।" कह कर मैंने कड़क-कड़क दो बादाम तोड़ दिये ! और उसने फ़ौरन मेरा हाथ पकड़ लिया।

"हैं हैं ! आप यह क्या करते हैं। दाँत टूट गया तो... ..." वह घबरा कर बोली।

"अच्छा इस तरह न तोड़ूँगा। लो पत्थर से तोड़े डालता।

दस-बीस अखरोट और दस-बीस बादाम।" कह कर मैं पत्थर तलाश करने लगा।

"आप इतना कष्ट मुझ दासी के लिए न करें। अखरोट या बादाम के टूटने से छत पर धम-धम होगी, सब लोग जाग जायँगे। वे लोग समझेंगे न जाने क्या कर रहे हैं। आधी रात का समय है ऐसा न करें।" उसने मेरी बाँह पकड़ ली। मैंने भी समझा कि पत्नी का अनुरोध मान जाना उत्तम पति का परम पावन और सर्व प्रथम कर्तव्य है।

"तो तुम कुछ भी न खाओगी!"

"ये मौसमी फल सुबह तक बिगड़ेंगे नहीं, दिन में खा लूँगी। और आप का प्रेम इस तरह क्या कम है।" उसने कहा और मैंने उस की युक्तियाँ बड़ी जानदार समझीं! लेकिन मेरे मौसमी फल योंही रखे रह गये।

पता नहीं, उसने क्यों कुछ भी न खाया। सिंघाड़ों का मौसम था। नवम्बर का प्रारम्भ हरे-हरे फूल-से मुलायम दूधिया सिंघाड़े मैं छाँट-छाँट कर लाया था और 'सक्सेसफुल हस्बेण्ड' में स्पष्ट लिखा था कि हरेक शरीफ़ और भली पत्नी पति द्वारा दिये गये फलों को बड़े प्रेम से खाती है। वह दृश्य कितना मनोहर होता है कि मुस्काकर पति एक टुकड़ा किसी फल का नववधू के मुँह में देता है और वह प्रसन्नता से उछलते हुए कलेजे, मुस्काती हुई पुतलियों और शर्माते हुए गुलाबी गालों से इंकार करते हुए धीरे से मुँह खोल कर उसे खा जाता है और फिर कम्पित कर और लजीली आँखों से स्वयं अपने 'जीवन-सर्वस्व' को इसी प्रकार स्वयं खिलाती है। यह आदान-प्रदान फलों का आदान-प्रदान नहीं; बल्कि दो हृदयों का आदान-प्रदान है।

लेकिन उसने कुछ भी न खाया था, जी में तो आया कि नीचे जाकर "सक्सेसफुल हज़्बेण्ड" उठा लाऊँ और खोल कर दिखादूँ कि देखो, लिखा है कि नहीं, मौसमी फलों की बाबत। सिंघाड़े, बादाम, अखरोट सभी मौसमी फल थे। दो ही तरह के फल होते हैं, तर और सूखे और मैं दोनों प्रकार के इसी लिए ले आया था कि न जाने श्रीमतीजी को कैसे फल पसंद आवें। उनको बहाना करने का मौक़ा तो न मिले कम से कम।

"आख़िर क्यों नहीं खाती हो, इससे साफ़ स्पष्ट है कि तुम नाराज़ हो!" मैंने उससे फिर फलों का ज़िक्र छेड़ा!

"आप मेरे सर्वस्व हैं। आपसे नाराज़ी!" उसने आँखों से प्रेम उड़ेलते हुए कहा।

"तुम्हें शायद ये अच्छे नहीं लगे!"

"आप की भेंट भला अच्छी न लगे।" वह बोली और उसने भेंट शब्द कह कर मुझे याद दिला दिया कि प्रथम-मिलन में भेंट भी देना अत्यन्त आवश्यक और प्यार की निशानी समझा जाता है। 'भेंट' शब्द उसके मुँह से निकला और मैं उफ़ करके रह गया। इसे तो भूले ही जा रहा था!

"हाँ, मैं अपनी 'उनको' देने के लिए कुछ 'भेंट' साथ तो लाया न था और मेरे बचाव के लिए "सक्सेसफुल हज़्बेण्ड" में साफ़ लिखा था कि अगर भेंट ले आने की याद न रहे,तो इसमें 'नववधू' की पसंद भी प्राप्त की जा सकती है और इस प्रकार भेंट का मूल्य और भी बढ़ जाता है। मैं प्रसन्न ही हुआ कि इनकी इच्छा और पसंद वाली भेंट ही उन को भेंट करना सर्वथा उचित है।

मैंने ही बात-चीत का सिलसिला फिर शुरू किया।

"हाँ, भेंट! यों तो मेरा हृदय ही तुम्हारी भेंट है। लेकिन

इसलिए भेंट नहीं लाया था कि पता नहीं, तुम पसंद करो या न करो।"

"आपकी और मेरी पसंद दो-दो थोड़े ही हैं, आपकी पसंद सो मेरी पसंद !" श्रीमतीजी बोलीं।

"फिर भी तुम अपनी कुछ पसंद तो बताओ। इस प्रथम-मिलन की प्रसन्नता में मैं तुम्हें कुछ न कुछ देना ही चाहता हूँ !" प्यार से कहा।

"आप मिल गये, तो सब-कुछ मिल गया !" वह मेरी आँखों में आँखें उलझा कर बोली।

"फिर भी, तुम्हें मेरी क़सम !" मैंने आतुरता से उसका हाथ पकड़ कर कहा।

"सच, मैं तो कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझती !" वह अभी तक इंकार ही किये जा रही थी।

"मेरी यह बात तो माननी ही पड़ेगी।" मैंने फिर आग्रह किया।

"आपकी इच्छा ! आपकी आज्ञा सिर माथे पर !"

"तो अपनी पसंद बताओ ! क्या भेंट करूँ ?"

"आप जो चाहें, पसंद तो आप ही की होगी। आपकी पसंद सो मेरी पसंद !"

"फिर भी कुछ तो बताओ !"

"उहूँ ! मैं कुछ न कहूँगी।"

"अच्छे !"

" ना, आप जो चाहें !"

"तो वैस्ट एक्सपैण्डर लादूँ !" मैंने अनुरोध और प्यार भरी वाणी में कहा।

"वैस्ट एक्सपैण्डर क्या !" वह विस्मय से बोली।

"चेस्टएक्सपेण्डर से सीना चौड़ा होता है। सेहत बड़ी अच्छी बन जाती है!" मैंने पहलवानी छाँटते हुए कहा।

"हुश! आप कैसी बातें करते हैं।" उसने लजाकर आँखें नीची करलीं।

"नहीं-नहीं···मेरा मतलब यह नहीं। ओह······तुम समझी नहीं। तो किसी चीज़ का नाम लो न।" मैं अपनी नासमझी पर झेंपता हुआ बोला। चेस्टएक्सपेण्डर मुँह पर चढ़ा हुआ था, इसलिए मुँह से निकल गया। मैं बड़ा पछताया - यह क्या कह बैठा।

"आप जो चाहें, सो ले आयें। सब कुछ मेरे सिर माथे पर।" वह लजाती हुई बोली।

"नहीं नहीं, मेरा मतलब था—वह क्या होता है। वही···वही अरे, जो हृदय पर लटक कर शोभा बढ़ाता है।" मैंने उसे किसी आभूषण की याद दिला देने के लिए इधर-उधर घुमा-फिरा कर बात की।

"लौकेट?"

"हाँ, हाँ मेरा मतलब—उसी से है। तुम्हारे लिए कल ही एक लौकेट—हीरे जड़ा लौकेट—लाऊँगा। माफ़ करना चेस्टएक्सपेण्डर ज़बान पर बुरी तरह चढ़ा हुआ है।"

"कोई बात नहीं।" श्रीमतीजी ने बहुत ही स्नेह से कहा और मैंने बड़ा हल्कापन अनुभव किया। मन ही मन अपनी वन की बड़ी ही प्रशंसा की। सचमुच हैं भी कितनी चतुर मेरी वे कि मेरी उलझन सुलझा दी। मैं बहुत देर से सोच ही न पा रहा था कि भेंट के लिए क्या लाऊँ और उन्होंने चटपट नाम ले दिया—मेरी सारी परेशानी काफ़ूर हो गई। वाकई मेरी वे बहुत-बहुत

प्यार करने के क़ाबिल हैं ! 'प्रथम-मिलन' ही जीवन की भविष्य वाणी है, ऐसा "सक्सेसफुल हज़्बेण्ड" में लिखा था, सो आज साफ़ साफ़ मालूम हो गया। मेरी उलझनें इसी प्रकार इनके एक इशारे से सुलझ जाया करेंगी।

श्रीमती जी ने लौकेट का नाम उच्चारण करके अपनी पसंद भी प्रकट कर दी और हुबहू वही हुआ जो "सक्सेसफुल हज़्बेण्ड" में लिखा था।

प्रसन्नता से मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था। मैं महसूस कर रहा था कि मैं बुरी तरह उन के प्रेम में पड़ गया हूँ और यह भी अनुभव कर रहा था कि वे भी पूरे इरादों से मुझे बेहद प्रेम करने में तत्पर हैं। मैं सोच रहा था कि बात का सिलसिला किस तरह आगे बढ़ाया जाय कि नीचे आँगन में खटपट मचनी शुरू हो गई।

"हैं, यह क्या !" मैंने उधर कान लगाकर सुनते हुए कहा।

"शायद दिन निकल आया।" वह बोली।

"ओह !" मैंने लाइट ऑफ़ करके देखा तो वाक़ई दिन निकल आया है।

"तब तो मैं ...." मुस्कराते हुए "उन" की शर्मीली पुतलियों में अपनी नशीली पुतलियाँ घुमाते हुए मैंने कहा और आतुरता से उसकी सुकुमार कलाई पकड़ ली।

"हुश ! हटो भी ......" वह धीरे से बोली।

"नहीं प्रिये ! तुम मेरे......"

"छोड़ो भी कोई आ जायगा !" कह कर उसने शर्मा कर हाथ छुड़ा लिया।

"अच्छा, मैं तो अब ..."

"हाँ!" मुस्करा कर उसने अपना मुँह आँचल से ढक लिया। मैं प्रथम-मिलन की अपनी शत-प्रतिशत सफलता, भविष्य जीवन के कामना भरे स्वप्न और प्रेम का निराला नशा लिये हुए नीचे आ गया।

तीसरा दर्जा

पता नहीं, हमारी श्रीमती जी को कब समझ आयगी कि वह समय-संजोग देख और लगन-महूरत विचार कर काम करना सीखेंगी। लाख बार समझाने-बुझाने पर भी श्रीमती जी की आदत न बदली और जब मन में आया चाहे जो कुछ कर डाला। यदि मैंने कभी उनको प्यार से मनाना चाहा कि समय देख काम किया करो तो जवाब मिला—'आप भी बड़े ही वहमी हैं? इतना वहम तो औरतें भी नहीं करतीं।' और अगर मैंने कभी तेज़ आवाज़ में, ज़रा क्रोध के ढंग से कहा तो एकदम तुनक कर बोली—'आपको क्या, अपने कार्य की हम ज़िम्मेदार हैं!'

अपनी आदत के अनुसार हमारी श्रीमतीजी ने यही किया, यानी बिना कुछ सोचे-समझे आप बीमार पड़ गईं—और सो भी अपने मायके में। यही नहीं, एक पत्र भी मुझे लिख दिया, "तुम्हारा बड़ा जी पड़ा है, हम बीमार हैं। जल्दी आओ यानी पहली गाड़ी से ही। अगर न आये तो हमारी बीमारी बढ़ जायगी।" यह और एक नई मुसीबत खड़ी हो गई। अरे, अगर बीमार ही पड़ना था और मेरे प्यार की ही परीक्षा लेनी थी तो ज्योतिषियों से पत्रा

दिखवाकर शुभ दिन, शुभ लगन, शुभ मुहूर्त मालूम करा के बीमार पड़ी होतीं तो मुझे कोई शिकायत न होती, कोई रंज न होता। तीन पैसे खर्च करके मुझ से ही मालूम कर लिया होता तो मैं ही ऐसा अच्छा समय बता देता कि मुझे भी फुर्सत होती और तुम को भी उन दिनों कोई काम न होता। मज़े में बीमार पड़ी होतीं, पत्र लिखतीं, पर कौन किसकी सुनता है?

बात बहुत लम्बी-चौड़ी है, पर कहना केवल यह है कि श्रीमती जी बीमार पड़ गईं और मुझे भी एक कार्ड लिख कर बुला भेजा। औरत का मामला, जाना आवश्यक हो गया। अगस्त के दिन बादलों का कहीं नाम निशान नहीं, बड़ी तेज घुमस। जाने की तैयारी हो गई और बहुत थोड़ा-सा सामान लेकर मैं स्टेशन पहुँचा। युद्ध का ज़माना, गर्मी का मौसम और काम का समय—यह भी बीमार होने का कोई मौका है।

गाड़ियाँ कम हो गई हैं, मुसाफिर बढ़ गये हैं। गाड़ी के समय से २-२।। घण्टे पहले स्टेशन पर पहुँचना एक धार्मिक रिवाज़ हो गया है। इसलिए चाहे जितनी देर पहले स्टेशन जाया जाय पहुँचने पर मालूम होगा कि पहले से ही मुसाफिर मौजूद हैं। स्टेशन पहुँचा तो देखा कि खिड़की पर पचासों आदमियों की भीड़ है! देखते ही मैं घबराया—शायद गाड़ी छूटने वाली है। सामान कुली के पास छोड़कर मैं खिड़की की ओर भागा। गाड़ी छूटी—बस अब छूटी! अगर यहीं रह गया तो अपनी "वे" बड़ी नाराज़ होंगी, उनके घर वाले भी क्या सोचेंगे। हे परमात्मा, घर से तो बहुत जल्दी चला था। यह क्या हो गया कि गाड़ी छूटने वाली है।

दौड़ कर मैं खिड़की के पास आया और भीड़ में घुसने लगा।

"गाड़ी छूटने वाली है, जल्दी टिकिट……।" मेरे मुँह से निकला।

"कौन-सी गाड़ी!" भीड़ में से एक आदमी ने पीछे मुँह करके कहा।

"लुधियाने वाली!"

"लुधियाने वाली!—अभी डेढ़ घण्टा है!"

"वाह बाबू जी!"

"कहीं और तो नहीं जाना?"

"अहा…हा…हा · अभी डेढ़ घण्टा है!" भीड़ में से कितनी आवाज़ें बोल पड़ीं।

"अभी बहुत देर है! भीड़ की धकम-धक्का देख कर ही मैंने समझा था कि शायद वक्त थोड़ा रह गया है। उफ़! बड़ी गर्मी है।" पसीना पोंछते हुए मैंने कहा।

"अभी तो खिड़की भी नहीं खुली।" कोई बोला और मैं भी उनके पीछे खड़ा हो गया।

× × × ×

आध घण्टे बाद खिड़की खुली और भीड़ में जैसे एकदम जान आ गई। खिड़की के खुलते ही एकदम धकम-धक्का शुरू हुई।

"बाबू जी टिकिट।" भीड़ में से आगे वाले कई गले एक साथ चिल्लाए और दस-बारह हाथ एक साथ खिड़की में घुसने लगे। मैं भी प्रयत्न करके खिड़की के आस-पास ही था, लेकिन फिर भी बहुत दूर। टिकिट बाबू टिकिट गिनने-गिनाने में लगा और इधर जीवन-संघर्ष शुरू हुआ। पिछली भीड़ ने रेला लगाया और एक आदमी ने मेंढे की तरह अपना सिर भीड़ में घुसेड़ कर अन्दर घुसना चाहा। और लगी रेल-पेल धकम-धकेल मचने।

"यह क्या बात है, साहब।" कोई गुस्से में बोला।

"अरे यार, मारे क्यों डालते हो ?" दूसरा चिल्लाया।

"बेकार की बात करते हैं, आप तो, यह आपकी··· ।"

"यह हरगिज़ नहीं हो सकता।"

"हमें भी तो जाना है। गाड़ी छूट गई तो··· " लोग एक दूसरे को धकेल रहे थे और टिकिट बाबू अपने काम में मस्त था!

"टिकिट दीजिए बाबू जी!"

"बड़ी देर हो रही है, गाड़ी छूट जायगी।" कई तरह की आवाज़ें सुनी गईं।

"टिकिट डिस्ट्रीब्यूट कीजिए न बाबू जी।" मैंने पढ़े-लिखों के ढङ्ग पर कहा। उधर टिकिट बाबू का काम समाप्त हो गया था। उसने हमारी तरफ़ देखा।

"टिकिट बाबू जी!" एक साथ आठ-दस गले चिल्लाये। तीन हाथ अन्दर थे ही। खिड़की के सूराख में जगह कहाँ थी। फिर भी एक आदमी ने हाथ घुसेड़ने की कोशिश की।

"अरे यार क्या करते हो!" कोई आदमी मुँह बिगाड़ कर बोला।

"हाँ, अमृतसर का।"

"मैं फीरोज़पुर जाऊँगा।"

"लुकसर का टिकट!" और टिकिट बाबू ने खट-खट तारीखें डाल कर टिकिट तथा बाकी पैसे उनके हाथों में रख दिये। एक आदमी ने अपना हाथ निकाला कि चार हाथ एक साथ उसमें घुसने लगे। मैं भी खड़ा भीड़ में भिंच रहा था। फीरोज़पुर वाला हाथ तो निकल आया किसी प्रकार, लेकिन इतनी जल्दी चार हाथ उसमें घुसने की ताक में थे, एक निकला तो तीन घुस गये और

उनके मुँह "टिकिट-टिकिट" चिल्लाने लगे। अब बेचारे अमृतसर और लकसर वाले हाथ फँस गये।

"आह!" अमृतसर के मुँह से निकला।

"निकालने भी दो कि अपना हाथ घुसेड़े देते हो।" लकसर ने गुस्से में कहा और किसी प्रकार खींच-तान कर दोनों ने अपने हाथ निकाल लिये। बड़ी कोशिश से वे भीड़ में से निकलने में सफल हुए। मैं भी अब करीब-करीब खिड़की के पास था। हाथ भी नज़दीक पहुँच चुका था।

चार-पाँच आदमी टिकिट ले गए और मैंने भी कोशिश करके हाथ बढ़ाना चाहा कि एक हट्टे-कट्टे आदमी ने झट हाथ अन्दर कर दिया और घबराहट में चिल्लाया, "बाबू जी, लाहौर की टिकिट!" लाहौर में ही वह खड़ा था। उसकी अक्ल पर सब हँस पड़े और झट एक आदमी ने उसका हाथ खिड़की से बाहर खींच लिया।

"मैं मैं...टिकिट।" कहकर लाल आँखें करके वह आदमी उस आदमी पर झपटा।

"बस! बस!"

"आँखें लाल मत करो सरदार जी!"

"तुम भी तो ज़बरदस्ती करते हो।"

"इतना लम्बा सफ़र है, तभी तो टिकिट लेने की इतनी जल्दी है।"

कितनी ही आवाज़ें एकदम बोल पड़ीं और सरदार जी सहम कर ख़ून का सा घूँट पीकर रह गये। मौका पाकर मैंने भी टिकिट के लिए हाथ बढ़ाया, और धक्कम-धक्का, खींचतान, रेलपेल के बीच टिकिट लेने में सफल हो गया।

हाथ अन्दर का अन्दर और बाहर से कई आदमियों का अपने-अपने हाथ अन्दर घुसेड़ने की ज़बरदस्त कोशिश। मैं हाथ

को खींचने लगा और भीड़ मुझे भींचने लगी। गर्मी का ज़ोर, आदमियों की भीड़, तेज धकम-धक्का और रेल-पेल, और भीड़ की साँसों से निकलने वाली तरह्-तरह् की अलौकिक सुगन्ध!

"मैं मरा!" मेरे मुँह से निकल पड़ा।

"निकलिये भी बाहर साहब!"

"दूसरों को भी टिकिट लेना है।"

"आप तो जमे हुए खड़े हैं।" उन्हीं लोगों की यह आवाज़ें थीं जो मेरा हाथ अन्दर से नहीं निकलने देते थे।

"मेरा तो दम घुट रहा है।" मैंने कहा और "आह!" मेरी चीख़ निकल गई। किसी ने पैर का भुर्ता कर डाला। फिर मेरी चीख जो निकली तो झट मेरा हाथ न जाने किस ने खिड़की से बाहर खींच दिया और मेरे निकलते ही भीड़ ने ऐसा रेला लगाया कि मैं और मेरे साथ अन्य दो-चार सज्जन एक दम खिड़की से बहुत दूर यानी भीड़ के बाहरी किनारे पर आ गये। वैसे ही जैसे समुद्र की लहरों से समुद्र पर तैरने वाला कूड़ा-कर्कट किनारे पर आ पड़ता है। भीड़ के रेले से कई व्यक्ति मेरे साथ ही भीड़ के बाहर आ पड़े थे, उनमें से एक साहब की एक चप्पल वहीं गायब हो गई। एक पैर में चप्पल और एक पैर सूना।

मेरी साँस बुरी तरह फूल रही थी। मैं पसीना-पसीना हो रहा था। मेरी जो दुर्गति हुई थी, उसे मैं ही जानता था।

"असभ्य कहीं के!" मैंने ऐसा मुँह बिगाड़ कर कहा कि पास खड़ी हुई एक फैशनेबिल लड़की हँस पड़ी। मैं मन मार कर गया।

मेरे साथ ही एक सज्जन, जो मेरे बाद टिकिट प्राप्त करने का हकदार अपने को समझ बैठे थे और मेरे पास ही बड़े अदब-

कायदे से खड़े हुए थे, अपना पसीना पोंछते और हाँफते हुए लगे हाय-तोबा मचाने। उन्होंने चिल्ला-चिल्ला कर कहना आरम्भ किया—"हाय हाय! कमबख्तों ने मेरा भुर्ता बना दिया। मेरी तो एक चप्पल भी अन्दर ही रह गई! अभी दो दिन भी न पहन पाया था! हाय मेरी वह चप्पल!! ये जंगली, कब सभ्यता सीखेंगे! नालायकों को टिकट लेना भी नहीं आता। अरे हम कहते हैं, हम स्वराज्य लेंगे। चले हैं, स्वराज्य लेने, टिकिट लेने की जिन को तमीज नहीं। मारे धक्कों के मेरी पसलियाँ भी तोड़ डाली।"

हाँफने-हाँफते वह काफ़ी थक गये थे, उन्होंने साँस लेते हुए अपनी जेब टटोली और सन्न-से रह गये, फिर व्याख्यान शुरू किया—"अरे मेरा पाँच का नोट ही गायब हो गया। यह है प्रबन्ध स्टेशन का। गरीबों की मुश्किल है। हाय, पाँच रुपये का नोट! अशिक्षित, अशिष्ट, ये हिन्दुस्तानी आज़ादी चाहते हैं! अरे तुम मूर्खो! हाय पाँच का नोट!"

"बेशक! ये असभ्य क्या आज़ादी लेंगे?" मैंने उनका समर्थन किया। मेरी भी तो बुरी गत की गई थी।

वह सज्जन वैदिक सोशलिस्ट-से मालूम होते थे। पाजामा कुर्ता, ऊपर बंडी और चप्पल और मूँछें भी साफ़। वह पसीना-पसीना होकर चिल्ला रहे थे, मैं पसीना पोंछकर सामान ठीक कर जाने की तैयारी में था और एक कालेजियट छोकरी हमारी हालत देख मुस्कराती हुई अपनी लिपस्टिक की लाली में चमक और गालों के पाउडर झलक पैदा कर रही थीं।

वह सोशलिस्ट इतने चिल्लाए कि पुलिस के दो आदमी भी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने आते ही भीड़ को धकेलना शुरू किया।

भीड़ सहम कर कायदे में आ गई। उन सज्जन से एक पुलिस वाले ने सज्जनता का व्यवहार किया और उनको टिकिट लेने में सहायता देने की अस्वाभाविक उदारता भी दिखाई। उनकी खोई चप्पल भी मिल गई, पर पाँच रुपये के नोट का कुछ पता न लग सका।

× × × ×

गाड़ी छूटने में अभी लगभग आध घण्टा था। गाड़ी में बैठा हुआ मैं श्रीमती जी की अक़्ल पर मनही मन खीज रहा था। बीमार होने के लिए कितना बुरा मौक़ा उसने चुना था। अक़्ल तो अक़्ल—उसका शौक तो देखिए कि उसको इन बेतुके दिनों में बीमार होने की सूझी। उसको मालूम भी न होगा कि कितनी मुसीबतें झेल और जोखम उठाकर मैं उस के पास जा रहा हूँ।

गर्मी बहुत थी और गाड़ी में दम घुटा जा रहा था। देखते देखते डिब्बा बिलकुल ठसाठस भर गया। सभी गर्मी के कारण परेशान।

"हे परमात्मा, अब तो बस गाड़ी चला दे, मरे जा रहे हैं—ओम्!" एक भगत टाइप के आदमी ने कुर्ते से हवा झलते हुए कहा।

"ऊह! परमात्मा, गाड़ी चलाता है या ड्राइवर।" एक नौजवान ने मुस्कराते हुए भगत जी पर व्यंग किया।

"आप तो अजीब आदमी मालूम होते हैं।" भगत जी उन पर तरस भरी हँसी हँसते हुए बोले।

"अजीब की इसमें क्या बात है। गाड़ी तो ड्राइवर चलाता है।" नौजवान ने फिर वही बात दुहराई।

"उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता!" वह परमात्मा सर्व शक्तिमान हैं। आप कहते क्या हैं।" भगत जी को ज़रा जोश आ गया।

"लेकिन वह गाड़ी फिर भी नहीं चला सकता !" वह जवान फिर भगतजी के दिल पर चोट कर गया।

"वह हर एक काम कर सकता है, उसमें सब शक्तियाँ हैं, उसके इशारे से ही सूर्य-चन्द्रमा अपना-अपना कार्य करते रहते हैं !" भगतजी लाल-से हो रहे थे।

"लेकिन भगतजी, ये कमबख्त रेलवे वाले उस का कहा बिलकुल नहीं मानते।" नौजवान की बात सुन कर मुझे हँसी आ गई। फिर क्या था ! भगतजी लाल-लते हो कर मेरी तरफ़ देखते हुए बोले, "चार अक्षर अंग्रेज़ी क्या पढ़ गये, धर्म को तिलांजलि दे दी। नास्तिकता है, यह सब नास्तिकता है।"

"नहीं पण्डित जी, मैं तो मानता हूँ कि ईश्वर की आज्ञा से ही सारे कार्य होते हैं। मेरा तो पक्का विश्वास है कि रेलवे-टाइम-टेबल बनाते समय परमात्मा से मंजूरी ज़रूर ली जाती होगी !" मेरी बात सुन कर कई आदमी खिलखिला कर हँस पड़े।

"क्यों इनके मुँह लगते हो पण्डित जी !" एक बूढ़े सज्जन ने समझाया और पण्डित जी ने तिरस्कारभरी वाणी में "नास्तिक" कह कर ऐसा मुँह बिगाड़ा जैसे उनको बलपूर्वक कास्ट्रायल पिला दिया गया हो।

इधर हममें ये व्यर्थ की बातें शुरू हुईं, उधर गाड़ी चल दी। हवा लगने लगी और घबराहट कुछ कम हुई। चार-छः स्टेशन भी निकल गये। मुझे बड़ी देर से 'लघुशङ्का' मालूम हो रही थी। सहनशीलता की सीमा भी समाप्त-सी होती दीख रही थी। ख़ैर, मैं उठा और रास्ते में बैठे हुए यात्रियों को मुस्कराती हुई आँखों से अपनी आवश्यकता समझाता हुआ आगे बढ़ा। पेशाबघर के पास आया तो देखा कि एक मुसाफ़िर ठीक पेशाबघर के दरवाज़े

से सटे हुए अपने बिस्तर पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं !

"ज़रा, आपको तकलीफ़ तो होगी ही, मैं अन्दर जाना चाहता हूँ !" मैंने बड़ी विनय से कहा, पर हुक्के की गुड़गुड़ाहट में मेरे शब्द उसके कान में शायद पड़े ही नहीं।

"एक तरफ़ हट जाइये न !" मैं फिर बोला। फिर भी मेरी बात का कोई जवाब उसने न दिया। और कई मुसाफ़िर मेरी हालत पर हँसने लगे।

"अरे बहरे, सुनते हो या नहीं ?" एक जवान ने ज़रा तेज़ आवाज़ में कहा और हुक्केबाज़ महाशय के कानों में जैसे किसी ने गरम तेल डाल दिया हो। वह भड़क कर बोला, "क्या है ?"

"एक तरफ़ क्यों नहीं हट जाता !" उसी जवान ने उसे वहाँ से रास्ता छोड़ देने को कहा।

"क्यों हट जायँ ? हमने क्या टिकिट नहीं लिया ? वाह साब, वाह ! बड़े हटाने वाले आये ! कोई मुफ़्त बैठे हैं क्या ?" वह मुसाफ़िर अधिकार-रक्षा की भावना से प्रेरित हो रहा मालूम होता था।

"अरे भाई, यह तो रास्ता है।" मैंने उसे समझाया। मेरी हालत ख़राब थी, न जाने किस प्रकार मैं कण्ट्रोल किए हुए था।

"रास्ता है तो क्या करें ! ग़रीब आदमी को लोग चैन ही नहीं लेने देते। बाबू लोग तो चाहे जहाँ बैठ जायँ—आराम से सफ़र करें और हम ग़रीब रास्ते में भी नहीं बैठ सकते।" वह हुक्के की नली अपने हाथ में थामे मेरी तरफ़ गर्दन उठाये कह रहा था और सारे मुसाफ़िर उसकी ओर देख रहे थे।

"अरे भाई, रास्ते में बैठने के पैसे तो नहीं दिये। अब किसी को पाख़ाना-पेशाब लगेगा तो कोई कहाँ जायगा।"

उसी के उम्र के एक आदमी ने उसे समझाया।

"यह तो मुसाफ़िरी है। मुसाफ़िरी में पाखाना-पेशाब क्या। और यह सब काम तो घर पर ही करके आने चाहिए। मुसाफ़िरी करते हैं और आराम भी चाहते हैं।" वह बोला।

"खुद तो बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। मुसाफ़िरी-उसा-फ़िरी लगाई है। उठ रास्ते से।" एक अन्य सज्जन ने कहा।

"अजी मतलब तो तुम्हारा भी यही है कि मैं हट जाऊँ। सब पैसे वालों के साथी हैं। ग़रीबों को परेशान करना है। ग़रीब आदमी सबसे नीचे पेशाब-घर के पास बैठे तब भी उसकी खता और बिंच पर बैठे तो भी मुश्किल!" वह लम्बा लेक्चर दे गया। लेकिन उठा फिर भी नहीं और मुँह फेर कर लगा फिर हुक्का गुड़गुड़ाने।

इस पर एक आदमी अपनी सीट से उठा और बड़े रोब के साथ उससे बोला, "उठता है कि नहीं, वह आध घंटे से खड़े हैं, बातें बनाए जाता है। उठ अभी, वरना ...!"

"हटते तो हैं। तुम लोग हमें चैन से थोड़े ही बैठने दोगे। लो बाबू जी पेट भर कर पेशाब करो।" कह कर उसने रास्ता दे दिया और तब मैं पेशाब करने के लिए अन्दर गया।

× × × ×

मैं लघुशंका से निबट कर आया, देखा तो मेरी सीट घिर चुकी है। एक साहब बैठे ऊँघ रहे हैं। उनका कन्धा हिला कर मैंने कहा, "श्रीमान जी, यहाँ तो मैं बैठा था।"

"नज़र बची और माल यारों का?" एक साथी ने हँस कर उसकी ओर संकेत किया और दो-चार आदमी हंस पड़े, लेकिन

उन पर जैसे कोई प्रभाव ही न पड़ा हो, ज्यों के त्यों मूँढ़ की तरह ऊँघते रहे। मैंने ज़रा ज़ोर से कन्धा हिलाया तो उनका नशा कुछ-कुछ उतरता-सा मालूम हुआ।

"क्या है?" वह नींद से जागते-से बोले।

"यहाँ तो मैं बैठा था। ज़रा जगह दीजिए।" मैंने कहा और वह ज़रा एक तरफ़ को सरक गये। मैं भी उसी थोड़े-से स्थान में 'फस' हो गया—फँस कर बैठ गया।

चारों तरफ़ गाड़ी में नज़र दौड़ाई। कोई ऊँघ रहा है, कोई जमुहाई ले रहा है, कोई दोस्त के कन्धे पर सिर रख कर आँखें बन्द किये आराम कर रहा है, कोई किसी से धीरे-धीरे बात कर रहा है। सामने की सीट पर हैट-बूटधारी एक बाबू साहब बैठे बड़े ध्यान से अंग्रेज़ी का कोई दैनिक पत्र पढ़ रहे हैं और उनके पास ही बैठा हुआ एक आदमी ऊँघ रहा है। उसके पैर मय जूतों के सीट के अगले सिरे पर टिके हुए हैं। घुटनों के दोनों तरफ़ होकर घुटनों के सामने हाथ एक दूसरे की उँगलियों में उँगलियाँ फँसाये हुए जुड़े हुए हैं।

वह आदमी ऊँघते हुए कभी दाईं ओर को कुछ झुक जाता था, कभी बाईं ओर को। बाईं ओर बाबू साहब अख़बार पढ़ने में लीन थे। कभी-कभी उसकी आँखें भी खुलती थीं, पर न के बराबर। वह आदमी ऊँघ रहा था। गाड़ी, पता नहीं, कैसे चलने लगी कि नई हालत पैदा हो गई, न हिलने वाले भी नशे में झूमने का आनन्द लेने लगे और वह आदमी तो बहुत ज्यादा हिलने लगा, लेकिन दाईं ओर को ही उसका सिर झुकता था। वह बार-बार पास बैठे हुए आदमी की पगड़ी या कन्धे से धीरे से टकरा जाता था।

'गड़ गड़ गड़ गट गट गट गटागट' करती हुई गाड़ी दौड़ी जा रही थी। यकायक ऐसी रफ़ार हुई कि ऊँघने वाले का सिर बाईं ओर झुकने लगा और पता नहीं, कैसे एक झटका ऐसा लगा कि ऊँघने वाले का सिर बाबू साहब के नंगे सिर से बड़े जोर से टकराया।

"अहमक !" बड़े गुस्से में मुँह बिगाड़ कर बाबू साहब ने एक हाथ से अपना सिर पकड़ा और दूसरे से उसे धकेला। धक्का जो उसे मिला तो 'छप्प'–से उस के दोनों पैर सीट से खिसक कर फ़र्श पर बजे और वहाँ पड़े हुए पानी के छींटे इस तेज़ी से उड़े कि सामने बैठे हुए एक लालाजी के सफ़ेद कपड़े बड़ी खूबसूरती से रँग गये। लाला जी एकदम लाल हो गये और बड़ी फुर्ती से उन्होंने ऊँघने वाले के दोनों कन्धों को क्रोध में इस तरह सफ़ाई और तेज़ी से हिलाया जैसे बन्दर पेड़ को हिलाता है। अब ऊँघने वाले की नींद का नशा उतरा।

"अन्धा है। बेवकूफ़। तमाम कपड़े··· ···!" लालाजी अपने कपड़ों की ओर देखते हुए क्रोध से बबकार उठे।

"उल्लू कहीं का ! मेरा सिर अभी तक झन्ना रहा है ! उफ़ !" बाबू साहब दोनों हाथों से अपना सिर पकड़े हुए थे और ऊँघने वाला व्यक्ति आँखें फाड़-फाड़ कर ताज्जुब से कभी लालाजी की ओर देखता तो कभी बाबूजी की ओर; लेकिन वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था, ऐसा उसके मुँह से पता चलता था।

"तमाम गन्दे हो गये !" लाला जी ने क्रोध, घृणा, तिरस्कार के सभी भाव एक साथ प्रकट किये।

"कमबख्त का सिर है कि लोहे की ईंट ! सिर ऐसा बजा कि अभी तक चक्कर खा रहा है।" बाबू साहब अपना अख़बार

सँभालते हुए बोले ! वह आदमी अपराधी की तरह इन दोनों की ओर देख ज़रूर रहा था, पर अभी तक मामले से अनजान था। उसने पूछा, "हुआ क्या ?"

"तेरा सिर नालायक !" बाबू साहब बोले।

"तेरे पैर बेवकूफ़ !" लालाजी उबल पड़े। ऊँघिया पर दुनाली दाग दी गई, सब खिलखिला कर हँस पड़े और ऊँघिया एकदम चुप बैठ गया।

चारों ओर कहीं कोई मुस्करा रहा था, कहीं कोई हँस रहा था। कोई लाला जी से सहानुभूति प्रकट करके जोश दिला रहा था, तो कोई बाबू साहब के साथ संवेदना प्रकट करके अपने को उदार साबित कर रहा था। अम्बाला का स्टेशन आ गया। गाड़ी रुकी—अरे दादा ! इतनी भीड़ ! और दुर्भाग्य से हमारा डिब्बा ही उस भीड़ के सामने पड़ गया। सभी मुसाफ़िर हमारे डिब्बे की तरफ़ दौड़े और हमारे डिब्बे के आदमी भी तन कर खिड़कियों में खड़े हो गये। दो चार फुर्तीले मुसाफ़िर दरवाज़े के पास आये और लगे खोलने। लेकिन खुलता किस से था दरवाज़ा !

टप-टप··· दो-चार लातें भी एक दो जवानों ने दरवाज़े पर जमाई और एकदम क्रोध करके बोले, "खोलो भी यार, गाड़ी छूटने वाली है।" लेकिन उनका यार अगर डिब्बे में हो तो खोला भी जाय दरवाज़ा।

"इस तरह नहीं ! वैसे थोड़े ही घुसने देंगे ये लोग।" कहकर फुर्ती के साथ उसने अपनी छोटी-सी अटेची अन्दर फेंकी ! और खिड़की पर चढ़ने की फुर्ती दिखानी शुरू की। अटेची इधर ध्यान मग्न एक सज्जन की गोद में गिरी। वह सज्जन इतनी हाय-तोबा और शोर-शार में भी "राधेश्याम · राधेश्याम······" का जाप

करने की हिम्मत दिखा रहे थे। अटेची जो आप की गोद में पड़ी तो ध्यान टूटा और एकदम खिड़की पर आये।

"कौन है पाजी। भजन में बाधा डाल दी!" वह बोले।

"पाजी होंगे आप!" चढ़ने वाला बोला।

"अबे अन्धा है क्या?" भजनानन्दी जी बोले।

"अन्धे हो तुम।"

"चल चल यहाँ से बेवकूफ।"

"तूने गाड़ी खरीद ली है क्या?"

"तू चला है गाड़ी खरीदने को।"

"तो क्या गाड़ी में नहीं चढ़ने दोगे?" अन्य आदमी ने कहा।

"देखते भी हैं। गाड़ी में तिल धरने को भी जगह नहीं।" अन्दर खड़े हुए अन्य मुसाफ़िर ने कहा। इतने में दौड़ता हुआ एक धुना आया। धनुष की तरह धुनकी उसके कंधे पर रखी थी। जल्दी-जल्दी बाहर खड़े हुओं को हटाते हुए भजनानन्दी जी से बोला, "ज़रा मेरी धुनकी सँभालिए। खुदा आप का भला करे। गाड़ी छूटी। बस अब छूटी।"

"चल-चल, आया लाट साहब कहीं का!"

"मैं खड़ा ही रहूँगा।" वह गिड़गिड़ाया और विनयशील ज़बरदस्ती दिखाते हुए अपने धनुष को अन्दर घुसेड़ने लगा।

उधर अटेची वाले जवान भी डिब्बे में चढ़ने का प्रयत्न करने लगा। भगतराज और जवान में हाथापाई शुरू हुई। उधर गाड़ी ने सीटी दी। धुना तो अपनी धुनकी सँभालता हुआ भागा, पर जवान हटने वाला न था, वह ज़बरदस्ती अन्दर घुसने की कोशिश करते हुए एक टांग खिड़की के किनारे ले भी आया। जोश में तो वह था

ही, पसीने-पसीने हो रहा था और भगतजी उस को अन्दर नहीं आने दे रहे थे।

खड़ड़-खट……एक झटका लगा, भक् भक्……शुरू हुई और गाड़ी ने रेंगना शुरू किया और जवान में नया जोश दौड़ गया। उन्होंने भजनानन्दी भगत को पीछे हटा दिया और फुर्ती से गाड़ी में चढ़ना चाहा। भजनानन्दी भगत की उनके इष्ट ने बुद्धि जगा दी और उन्होंने बड़ी सफ़ाई से जवान की अटेची डिब्बे से बाहर फेंक दी ! अटेची जो प्लेटफार्म पर गिरी तो जवान खिड़की से उतर अटेची लेने भागा। डिब्बा भर कहकहा लगाने लगा। और उस कहकहे में जवान के इतने ही शब्द सुन पड़े—'ससुर, तुझे कभी ठीक न किया तो……,"

गाड़ी चल दी। बहुत देर तक उस जवान और भजनानन्दी के संघर्ष की आलोचना होती रही। कई लोग हँसते रहे, कई दया-भाव दिखाते रहे और अपने को इस घटना से दूर समझते रहे। कुछ देर तक गाड़ी चलती रही। एक मुसलिम पीर साहब भी बैठे हुए थे। उन के पास ही एक मुसलमान जवान भी सजे हुए थे। पीर जी और एक मुसलमान सज्जन की बात-चीत बहुत देर से चल रही थी और वे दोनों विवश होकर भले ही होने वाली ज़ायकेदार घटनाओं का स्वाद ले रहे हों, वैसे वे सब बातों से अलग थे।

"क्या बात है ! उन की तो करामात ही अजब है ! उन में खुदा बोलता है !" मुसलमान सज्जन की बात सुनाई दी। मैं उधर ध्यान से देखने लगा।

"उनकी दरगाह नवाब हुसैनी शाह ने बनवाई थी, आज भी वहाँ मेला लगता है।" सैकड़ों खुदापरस्त मुसलमान वहाँ आकर

सिज़दा करते हैं।" पीर साहब अपना रंग चढ़ाते हुए बोले। उन दोनों की बातें पास बैठा हुआ तुर्रे वाला जवान भी सुन रहा था।

"कहाँ सिजदा करते हैं ?" उसने प्रश्न किया।

"वहीं - उनकी कब्र पर औलिया पीर रहमत शाह की कब्र पर।" सज्जन ने बड़ी श्रद्धा से उत्तर दिया।

"कब्र पर सिज़दा।" जवान ने कुछ मुँह बिगाड़ा। पीर तथा सज्जन दोनों ही को आश्चर्य हुआ उस जवान की बात पर।

"आप क्या इसे अच्छा नहीं समझते ? औलिया और पीरों की कब्र पर सिज़दा करने में बड़ा सवाब होता है। क्यों पीर साहब ?"

"इसमें क्या शक है !" पीर साहब ने सोचा-समझा हुआ जवाब दे दिया।

"कब्र पर सिज़दा करने में सवाब होता है। खूब !" जवान ने फिर व्यंग्य किया।

"तो आप इसे अच्छा नहीं मानते ?" सज्जन ने जवान से पूछा।

"बिल्कुल नहीं ! यह तो इस्लाम के ख़िलाफ़ है !" वह बोला।

"मैं तो पीरों के सामने सिज़दा करना सवाब समझता हूँ।" सज्जन भक्ति-भाव से बोले।

"यह बुतपरस्ती है।" जवान बोला।

"बुतपरस्ती !"

"हाँ। बुतपरस्ती।"

"बुतपरस्त होगे तुम।"

"बुतपरस्त हो तुम !"

"तुम काफ़िर हो।" सज्जन ने क्रोध से लाल होकर कहा। बुतपरस्त—जैसा विशेषण वह न सह सका।

"काफ़िर तुम्हारा बाप !"

"बेवकूफ़ ज़बान सँभाल कर नहीं बोलता। बदतहज़ीब !"

"बेलगाम।"

"होश से बात कर बे।"

"गाड़ी से गिरा दूँगा पाज़ी को!"

"तेरे बाप की है गाड़ी!" सज्जन का कहना था कि जवान हाथापाई करने पर उतारू हो गया। पीर साहब भीगी बिल्ली की तरह बैठे सुन रहे थे। हाथापाई की नौबत आई तो कई मुसाफ़िरों ने खड़े होकर उनको रोक लिया। एक बूढ़े मुसलमान सज्जन ने दोनों को समझाया—"नमाज़ का वक्त है और आप लोग इस तरह लड़ रहे हैं।"

"खुदा जाने, मुसलमानों को कब समझ आयगी! तभी तो ग़ैर कौम के आदमी हम पर हँसते हैं।" पीर जी ने भी कुछ कहने का रिवाज़ पूरा कर दिया।

इस्लाम के लिए आपस में ही सिर फोड़ कर जन्नत पाने का दम भरने वाले दोनों दीनी भाई ख़ामोश बैठ गये। सज्जन ने थोड़ी देर थकान उतारी और बाद में नमाज़ पढ़ना शुरू किया। वह सज्जन गुस्से में भरे नमाज़ पढ़ते रहे और वह जवान जब-तब लोगों की आँखें बचा कर उनकी ओर घूर-घूर कर देखते रहे। नमाज़ी सज्जन के ओठ बुरी तरह फड़क रहे थे जैसे मन ही मन उस जवान को गालियाँ दे रहे हों।

गाड़ी गड़-गड़—गट-गट··· करती हुई दौड़ी जा रही थी। थोड़ी देर तक ज़रा सुस्त और दबादब-सा वातावरण रहा। और दस-पाँच मिनट भी उनकी लड़ाई की आलोचना-प्रत्यालोचना न हो सकी। गाड़ी स्टेशन पर स्टेशन लाँघती हुई सहारनपुर आ पहुँची। और मेरी जान में जान आ गई। यहीं मुझे उतरना था।

चींटियों की चढ़ाई

चींटियों के बारे में सुना गया है, वे रात में काम नहीं करतीं। दिन-भर काम करके इतना थक जाती हैं कि रात को बेहोशी की नींद सोती हैं। लेकिन अब दुनियाँ बहुत कुछ बदल चुकी है और साथ ही चींटियों की पुरानी आदत भी बदल गई है। चाहे कहीं, अब भी पहले समय की शरीफ चींटियाँ हों; पर हमारे घर में तो नहीं हैं, यह सोलहों आने सही है।

एक तो नींद ही कम आती है, दूसरे अगर कुछ गड़बड़ हो जाय तो रात-भर के लिए सितारे गिनने का प्रोग्राम मिल जाता है। रात के ग्यारह बजे होंगे, एकाएक आँखें खुल गईं। खाट में खटमल हैं नहीं, फिर कौन तमाम शरीर को नोचे डालता है! मैं छटपटा कर उठ बैठा, देखा—ढेर की ढेर चींटियाँ तकिये पर जमा हैं और उनमें से बीसियों बड़ी बेतकल्लुफ़ी से बिस्तर पर चहलकदमी कर रही हैं। मेरे तमाम शरीर में खुजली मची हुई थी, चींटियों ने बुरी तरह काटा था। तकिये को दो-चार बार दीवार पर पटका, बिस्तरे को खूब झाड़ा और खाट में भी दो-चार हाथ मारे, उसे चार-पाँच बार छत पर पटका। खट-खट सुन कर मुन्नी की महतारी नींद में बड़बड़ाती हुई बोली—'क्या बात है?' मैं ने कहा—'कुछ नहीं।' और वह सो गई। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद मुझे भी नींद आ गई।

आधा घण्टा भी नींद का आनन्द न लिया होगा कि फिर शरीर में चिनगारियाँ लगने लगीं। फिर चींटियों के नुकीले डंक शरीर को छेदने लगे। अधजगी अवस्था में दो-चार चींटियाँ चुटखियों से मसल कर फेंकी भी, पर इससे काम न चला और फिर चारपाई से उठना ही पड़ा। उठा, बिस्तर झाड़ा और उसे एक तरफ़ रख दिया। लगा खाट को झाड़ने। एक बार, दो बार और कई बार खाट को उठाया और छत पर पटका। इधर मैं परेशान, उधर हमारी श्रीमतीजी खर्राटे की नींद में बेसुध! इस बार खाट को उठाया ही था कि मुन्नी की महतारी की आँखें खुल गईं। मैंने खाट को छत पर पटक दिया और वह एकदम क्रोध से बोली, "क्या है जी – सोने भी नहीं देते! दिन-भर काम के मारे फ़ुर्सत नहीं मिलती, रात-भर आप परेशान करते हैं।"

"ज़रा धीरे से बोलो, कोई सुनेगा तो इसका न जाने क्या मतलब लगाएगा।—और मैंने तुम्हें क्या परेशान कर रखा है जनाब?" मैंने कहा।

"परेशान नहीं कर रखा तो और क्या! रात-भर सोने भी नहीं देते।" श्रीमतीजी उठ कर अपनी खाट पर बैठ गईं।

"फिर उसी ढङ्ग की बात! तुम्हारी चारपाई से तीन फ़ीट दूर मेरी चारपाई है।—चलो सो भी रहो कहीं मुन्नी न जाग जाय।" मैंने खाट के बानों में हाथ मारते हुए कहा।

"हे परमात्मा, मैं किस घर में आ गई! रात में नींद लेना भी मुश्किल है।" धीरे से कह कर वह लेट गई।

"कैसे घर में आ गई?—तुम्हारी अम्मा ने हमें लाखों में से छाँट कर पसन्द किया था। और जब हमें भेंट दी गई थी तो क्या तुम किवाड़ों के झरोखों से नहीं झाँक रही थीं? तुम्हें मेरे सिर की

कसम, जो सच न बताओ—तुमने शर्मीली आँखों से मुस्काते हुए अपनी सखी गुलाब से हमारी तारीफ़ की थी या नहीं ?" मैं मज़ाक़िया प्यार के ढङ्ग में बोला और उसको हँसी आ गई।

"तुम से बहस करने के लिये हमारे पास फ़ालतू दिमाग़ नहीं है। सोने भी दोगे या नहीं ?" मुस्काते हुए उसने कहा।

"हमारे साथ एक रात जाग ही लोगी, तो क्या कोई हर्ज है ?" मैंने कहा।

"हाय राम ! अरे, सो भी रहोगे। एक बात मिली कि लगे बहस करने।" कह कर वह लेट गई और उसने मेरी ओर से करवट ले ली।

"कैसे सोऊँ ! पाँच मिनट लेटता हूँ कि शरीर में चिनगारियाँ लगने लगती हैं।"

"क्या खटमल काटते हैं ?" उसने मेरी ओर मुँह करके पूछा।

"खटमल नहीं, उसकी मौसी—चींटियाँ।"

"चींटियाँ !"

"हाँ, रात-भर बिलकुल भी नहीं सो पाया।"

"कल दिन में चारपाई देखना, शायद कुछ लगा हो।" वह बोली।

इतने में ही रामभजो (चौकीदार) ने गुडबाई करनी शुरू की। 'चार बज गये महाराज, राम का भजन कर लो महाराज।' कहता हुआ रामभजो चला गया।

"लो तुम आराम से सोओ। मैं तो नीचे कमरे में जाता हूँ।" कह कर मैं आँखों में नींद लिये नीचे आ गया।

× × × ×

कई दिन तक इसी प्रकार चलता रहा। रात में जिस दिन सर्दी हो जाती, चादर ओढ़ कर चींटियों से बच जाता और आराम की नींद लेता। जिस दिन गर्मी होती, सोते-जागते ही रात निकल जाती। समझ नहीं पा रहा था कि चींटियाँ क्यों चढ़ती हैं। एक सुबह, बड़ी देर से सोकर उठा था कि मुन्शी रामदयाल आ गये। मैं बैठा ऊँघ रहा था।

"बड़ी देर तक सोने लगे हो भैया! पहले तो बड़े तड़के उठ बैठते थे। सैर को जाना बन्द कर दिया है क्या?" मुन्शीजी ने बुढ़ापे की हितकामना और अधिकारपूर्ण वाणी से पूछा।

"रात-भर सो नहीं सका चाचा! इसीलिए देर तक सोता रहा।" मैंने सुस्ती उतारते हुए कहा।

"जी तो ठीक है? नींद क्यों नहीं आती? जवानी में यह रोग!" मुन्शीजी ने आश्चर्य से कहा।

"रोग-चोग तो कुछ नहीं है। बिस्तर पर रात में सैकड़ों चींटियाँ चढ़ आती हैं। इतना काटती हैं कि रात-भर एक मिनट के लिये भी सो नहीं पाता।" मैंने गिरी हुई तबीयत से कहा।

"चींटियाँ चढ़ आती हैं!" मुन्शीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

"हाँ, चींटियाँ चढ़ आती हैं।"

"चींटियाँ चढ़ें अपने बैरी को। भैया, फिर कभी इस बात को मुँह पर न लाना। नारायण! नारायण!!"

"तमाम शरीर पर और सिर में भी चींटियाँ चढ़ आती हैं! बड़ा ही परेशान रहता हूँ, चाचा जी।" मैं परेशानी दिखाते हुए बोला।

"फिर वही बात! यह तो बड़ा भारी अशगुन है। और चींटियाँ चढ़ना एक मुहावरा भी है। इसका मतलब बड़ा बुरा है लल्ला!

हमारे ऋषि-मुनियों ने कोई झूठ थोड़े ही कहा है।" मुन्शीजी अपना आध्यात्मज्ञान झाड़ते हुए बोले।

"मेरा तो नाकों दम है। रोज़ रात को तीन-चार-बार बिस्तर झाड़ना पड़ता है। और यहाँ तक कि तमाम शरीर पर चींटियाँ ही चींटियाँ नहीं-नहीं—तमाम शरीर पर 'वे' ही 'वे' चढ़ आती हैं।" मैंने अपनी बेबसी और वेदना प्रकट करते हुए कहा।

"तुम तो खुद पढ़े-लिखे आदमी हो। तुमने भी शास्त्र देखे होंगे। इस बारे में कुछ और ग्रन्थों में देख कर कभी फिर बताऊँगा। यह मामला बड़ा भयङ्कर और गम्भीर है। इसका कोई निदान अवश्य करना चाहिये। हरे राम! हरे राम!" मुन्शीजी ने मामले की गम्भीरता मेरे सामने रखी।

"क्या करूँ, आप ही बताएँ? रोज़-रोज़ तो देर तक भी नहीं सोया जाता!" मैंने पूछा।

"सोने-जागने की बात नहीं। तुम अभी बालक हो भैया! यह अशुभ है—यह तो दुश्मन को भी न हो। मुझे तो किसी देवता का कोप मालूम होता है।" मुन्शीजी और भी गम्भीर हो गये।

"देवता का कोप! कैसी बातें करते हैं!" हलकी-सी मुस्कान से मैंने सन्देह प्रकट किया।

"तुम्हें इन बातों का क्या पता! यह बातें ज्ञान और अनुभव से आती हैं। सियार-बोलना, बिल्ली-रोना, कुत्ते भौंकना, तारे-टूटना—सभी भारी आपत्ति की निशानी हैं। और चींटियाँ चढ़ना—यह तो दुश्मन को भी न हो। हे भगवान! चींटी चढ़ना और शाप की बिजली गिरना बराबर। हमारे पुरखा तो यही कहते आये हैं।" मुन्शीजी ने पूरा वर्णन कर दिया।

"हूँ! तो फिर क्या-कुछ किया जाय, चाचा जी! आप ही इस मोहल्ले में बड़े बूढ़े हैं।" मैंने पूछा।

"कुछ-न-कुछ तो किया ही जायेगा। तुम्हें भला हम इस घोर मुसीबत में कैसे देख सकते हैं! पण्डित दीनदयाल इस मामले में बहुत सयाने आदमी हैं। उनसे इसका कुछ निदान कराया जायगा।"

"यह भी नई मुसीबत खड़ी हो गई। दस-बारह दिन तो हो गये चाचाजी।"

"और क्या! ऐसी मुसीबत परमात्मा किसी पर न डाले। दुर्गा-पाठ से भी बुरे ग्रह टल सकते हैं। दुर्गाजी हर-एक बात में समर्थ हैं। फिर भी मैं पण्डित दीनदयाल से मिलूँगा।"

"मुन्नी की महतारी को तो तभी से बड़ी चिन्ता है।"

"चिन्ता की तो बात ही है लल्ला! अच्छा मैं चला!" कह कर मुन्शीजी खड़े हो गये। मैंने भी खड़े होकर नमस्कार किया और वह आशीर्वाद देकर चले गये।

× × × ×

चींटियों से परेशान होते पन्द्रह-बीस दिन व्यतीत हो गये। उनका चढ़ना बन्द न हुआ। समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाय। मुन्नी की महतारी बड़ी घबराई हुई थी और उस दिन से उसे और भी बेचैनी हो गई थी, जिस दिन मुन्शी जी इस घटना को देवता का प्रकोप बता गये थे। वह दुर्गा-पाठ की रट लगा रही थी।

एक दिन सुबह, मैं दफ़्तर के कागज-पत्र देख रहा था। मुन्नी की महतारी मुन्नी को, चटाई पर बैठी हुई दूध पिला रही थी। लाला रामभरोसे, पण्डित पातीराम और बाबू बुलाकीदास आ गये। देखते ही मुन्नी की अम्मा घूँघट निकाल कर खड़ी हो गई।

"क्या हाल है ? सुना है, बड़ी मुसीबत में फँस गए हो।" अन्दर आते हुए बुलाकी दास बोला।

"आइये, ठीक हूँ। ओह, पण्डितजी और लालाजी भी—प्रणाम।" मैंने खड़े होते हुए कहा।

वे तीनों अन्दर आकर पलँग पर बैठ गए और मैं भी कुर्सी पर बैठ गया।

"आजकल के छोकरे तो इसे मानते नहीं, पर भैया, यह है बड़ा अशगुन। कुछ किया-कराया भी ?" पण्डित पालीराम ने कहा।

"पण्डितजी, मैं तो इतना परेशान हूँ कि कुछ कह नहीं सकता।" मैंने कहा।

"तुम लोग इतने लापरवाह हो कि किसी बात की गहराई को नहीं समझते। आज भाई या भाभी होतीं तो क्या तुम इतना कष्ट पाते। वे एक दिन में ही कुछ न कुछ उठावना उठवाते, कोई न कोई झाड़-फूँक जरूर कराते।" लालाजी ने अपनापन दिखाते हुए कहा।

"चाचा जी, वे होते तो कुछ न कुछ इलाज कराते ही।" मैंने उनकी हाँ में हाँ मिलाई।

"और, भाभी तुम भी चिन्ता नहीं करतीं ? भैया तो इनकी कुछ सुध-सँभाल रखते नहीं।" बुलाकी ने मुन्नी की अम्मा से कहा।

"मैं तो बहुतेरा कहती हूँ मुन्नी के चचा ! मेरी तो इस घर में चलती ही नहीं। कह-कह कर थक गई कि दुर्गाजी का पाठ करा लो, पर इनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।" हमारी श्रीमतीजी ने इनको भड़काने के ढङ्ग में कहा।

"कोई रोग तो नहीं है ? किसी होशियार और अनुभवी डाक्टर को दिखाया होता।" बुलाकी ने अपनी सम्मति दी।

"क्या मालूम, क्या है !" मैंने कहा।

"हो सकता है, रक्त-विकार हो गया हो। शरीर तो व्याधियों का घर है।" लालाजी बोले।

"रोग काफ़ी ख़तरनाक मालूम होता है। वरना पन्द्रह-बीस दिन तक चींटियाँ-चढ़ना बन्द अवश्य हो जाता।" बुलाकी गम्भीर होकर बोला।

"बड़े आश्चर्य की बात है कि पन्द्रह-बीस दिन में कुछ भी फ़र्क़ न पड़ा।" पण्डितजी बोले।

"फ़र्क़ की बात तो दूर रही पण्डितजी, और बढ़ता ही जाता है।" मैंने कहा।

"सोये नहीं कि चींटियों की लहर की लहर बिस्तर पर दीखने लगती हैं। परमात्मा जाने, इतनी चींटियाँ कहाँ से आ जाती हैं। भगवान, ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि यह मुसीबत उठानी पड़ रही है।" कहते-कहते मुन्नी की माँ का गला भर आया और वह अञ्चल से आँसू पोंछने लगी।

"बस, ज़रा-सी बात हुई कि रोना शुरू कर दिया। आँसू तो औरतों के पलकों पर रखे रहते हैं।" मैंने मुन्नी की माँ को झिड़कते हुए कहा।

"अब भी कुछ कहती हूँ तो इसी तरह डाँटने लगते हैं। मेरे याने-स्याने बच्चे हैं, अगर कुछ हो गया तो........हाय! मैं कब तक मुँह बन्द किये रहूँ।"

"भाभी घबराओ नहीं। अब भैया इस मामले में ज़रा भी लापरवाही नहीं करेंगे। मैं भी किसी को बुलाकर दिखाऊँगा।" बुलाकी ने उसको ढाढ़स बँधाते हुए कहा।

"अब टाल करना ठीक नहीं। नीति-शतक में बिल्कुल स्पष्ट

लिखा है कि रोग, बैरी और आग जहाँ बढ़े कि इनका दबाना मुश्किल हो जाता है।" लालाजी बोले।

"मैं तो कह रहा हूँ कि किसी देवता की खोड़ है। देवताओं को खिलाते-पिलाते रहो तो ये अपने हैं और जहाँ इनको भूला कि आड़े आये। शङ्कर भगवान् का जाप करा दो। सब रोग जड़ से साफ़ हो जायेगा। धर्म की तो यही आज्ञा है।" पंडित जी ने सलाह दी।

"कल और सलाह करके फिर आप लोगों को कष्ट दूँगा।" मैंने पंडित जी से निवेदन किया।

"अच्छा, पर अब इसका जल्दी ही कुछ निदान कराओ।" लालाजी ने कहा।

"और क्या !— बहू घबरा मत, भगवान शङ्कर सब भला करेंगे।—लो चलो लाला जी।"

पण्डित जी बोले और दोनों उठ खड़े हुए। मैंने भी उठ कर हाथ जोड़ उनको विदा दी। बुलाकी वहीं रह गया और इसी विषय पर कुछ देर वार्तालाप होता रहा।

× × × ×

जिसने जो बताया, वही किया गया। किसी ने कहा, बिस्तर और चादर बदल दो। इन पर दो चार मच्छर मर गए हैं। इसी लिए चींटियाँ आती हैं। बिस्तर और चादर बदल दिए गये। किसी ने बताया, खाट बदल दो। खाट भी बदल दी गई।

एक दिन एक सज्जन आये। कहने लगे कि आप का खून मीठा है। पसीने में भी कुछ मिठास है, इसीलिए चींटियाँ बहुत आती हैं। कुछ दिन खूब नमक और मिर्च खाइये, जिससे खून चरपरा हो जाय और काटते समय चींटी का डंक चरपरा जाय।

मीठे ...न की बात सुन कर मुन्नी की अम्मा मुझ पर तन गई। कहने लगी —"हाय! मैं तो बहुतेरा कहा करती थी कि इतना मीठा मत खाया करो। पर इस घर में मेरी कौन सुनता है। शरीर में मीठा ही मीठा भरा है और पसीने में शर्बत बह-बह कर आता रहता है। तभी तो चींटियाँ चढ़ आती हैं। हाय राम! मेरी एक न मानी। अब सारा घर मुसीबत में पड़ा हुआ है। उसी दिन से हाई कमाण्ड की आज्ञा से मीठा बन्द कर दिया गया।

कई वैद्यों से सलाह ली, रक्त साफ़ करने के लिए दो बोतल अर्क भी पिया, पर सब बेकार। कई डाक्टरों की दवाएँ भी खाईं, पर कुछ लाभ न हुआ। बुलाकी भी बड़े आश्चर्य में था। उसका डाक्टरों पर बड़ा विश्वास था। उसने डाक्टर निजामी, केप्टिन गोस्वामी और कर्नल व्यास को भी दिखाया, तीन-चार इञ्जक्शन भी कराए, पर रोग किसी की समझ में न आया। मुन्नी की महतारी को अब पूरा विश्वास हो गया कि यह देवी की खोड़ है और और बिना उसकी मानता माने कभी दूर न होगी।

एक दिन शाम को मैं और मुन्नी की माँ आने वाली रात की चिंता में बैठे थे। बुलाकीदास एक अपरिचित नौजवान के साथ हमारे घर आया और फिर वही किस्सा छिड़ गया।

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है।" बुलाकी ने चिन्ता के साथ कहा।

"अब हम भी तो इसके लिए सब-कुछ दौड़-धूप कर ही रहे हैं।" मैंने कहा।

"तो दुर्गाजी का पाठ क्यों नहीं कराते?" मुन्नी की माँ विश्वास दिखाते हुए बोली।

"मामला इतना मुश्किल नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं।" वह नवागन्तुक बोला।

"मुश्किल नहीं है ? आज पचीस दिन से कौन एक मिनट भी सो [illegible] है।" मैंने कहा।

"और आधे भी तो नहीं रहे।" मुन्नी की माँ मुन्नी को हिलाते हुए बोली।

"आप तेल सरसों का लगाते हैं ?" उसने पूछा।

"हाँ, पर इससे क्या ?" बुलाकी ने उत्तर दिया।

"ठीक है, अक्सर चींटियाँ सरसों के तेल पर बहुत आती हैं। खैर एक काम कीजिए।" उसने सलाह दी।

"कहिए-कहिए !" मैंने उसकी बात काटते हुए कहा।

"सोते वक्त चारपाई के पायों के नीचे चार कटोरी या मिट्टी की प्यालियाँ रख कर उनमें पानी भर दीजिए और फिर सारी रात मीठी नींद का मज़ा लीजिए।" नौजवान ने दवा बता दी।

"आप भी क्या बात करते हैं ! देवी की खोड़, भला, ऐसे चली जायगी।" मुन्नी की माँ ने उसकी बात पर अविश्वास प्रकट करते हुए कहा।

"आज रात में तो दुर्गाजी का पाठ करा नहीं रहे हैं। इसे भी कर देखें।" वह बोला।

"हाँ, हानि ही क्या है।" बुलाकी ने भी उसका समर्थन किया।

"अच्छी बात है।" मैंने कहा। मुन्नी की माँ भी ऊपरी दिल से मुझसे सहमत हो गई और बुलाकी और वह नौजवान दवा [illegible]

वैसा ही किया गया। चारपाई पर पड़ते ही बेहोश होकर सो गया। सुबह उठने का मन भी मुश्किल से हुआ। सुबह मुझको जगाते हुए मुन्नी की माँ मुस्करा कर बोली, "कब तक सोये जाओगे ? रात को मैंने कई बार उठकर देखा, तुम्हें ज़रा भी होश न थी और एक भी चींटी खाट पर न थी।"

९.

इण्टरव्यू

रतन बाबू विवाह के नाम से ऐसे बिदकते थे जैसे गाँव का बैल बिजली की रोशनी से बिदकता है। जब रतन बाबू के घर पर लड़की-वालों की भीड़ लगी रहा करती थी, रतन बाबू समझते थे कि शायद उनके लिए ही इन लोगों ने कोशिशें कर करके लड़कियाँ पैदा की हैं। पड़ोस-वाले भी रतन बाबू को समझाया करते कि वह शीघ्र विवाह करके घर-गिरस्ती बसालें। लेकिन कोई भी उनको विवाह करने के लिए तैयार न कर सका।

विवाह का चर्चा समाप्त हो गया और धीरे-धीरे रतन बाबू उस चर्चे को फिर आरम्भ करने के इच्छुक होते गये। अब रतन को एक सुन्दर-सी संगिन की आवश्यकता सताने लगी। अन्तर्जातीय विवाह करने का उन्होंने पक्का इरादा कर लिया। कुल मिला कर बात यह है कि रतन बाबू अब अपने हर मित्र से विवाह की चर्चा करते, इसे जीवन के लिए आवश्यक बताते और सब छोटे साथियों को यही सलाह देते कि जल्दी से जल्दी विवाह कर डालें।

रतन का एक मित्र उनमें बड़ी दिलचस्पी रखता था। वह रतन की आवश्यकता और आदर्शों को समझता था। लेकिन मज़ाकिया स्वभाव का होने के कारण कभी-कभी दिल्लगी भी कर जाया करता था। वह चाहता था कि रतन बाबू की मनसा पूरन हो जाय तो उसको भी एक बढ़िया-सी भाभी मिल जाय। होली खेलने का मौका चाहे रतन बाबू उसे न दें, लेकिन जब तब आ कर वह हँस-बोल तो जाया ही करेगा, ऐसा उसे विश्वास था।

रतन बाबू को विवाह के बारे में बात-चीत करने में बड़ा आनन्द आता था। शायद वह इस बात में भी यक़ीन करते थे कि कला-कन्द चाहे खाने को न मिले, पर नाम लेने से भी कुछ न कुछ मुँह मीठा अवश्य हो जाता है। जो भी व्यक्ति रतन बाबू के पास आकर विवाह की बातचीत छेड़ता, वही रतन का घनिष्ट मित्र बन जाता। सुन्दर लड़कियों के बारे में रतन बाबू बड़ी ज़ायकेदार बातें करते थे। बातें करते-करते वह इतना मज़ा लिया करते थे कि ओंठ चाटने लगते थे।

मोहन रतन बाबू के लिए किसी लड़की की तलाश में था और अभी तक तीन-चार लड़कियों को वह देख भी चुका था। एक दिन मोहन सन्देश लेकर रतन बाबू के पास आ पहुँचा। रतन बाबू शाम का स्नान करके बालों में कंघा कर रहे थे। शीशे में जो मोहन की छाया देखी, तो कंघा करते हुए ही मोहन की ओर मुँह करके बोले, "अख्खैः! मोहन बाबू!"

"भाई साहब, बुरा न मानो तो कहूँ, आज तो गज़ब का रूप आया हुआ है।" मोहन मुसकराते हुए कह कर कमरे में पड़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गया और रतन बाबू खिलखिला कर हँस पड़े।

"आज अगर साथ में एक खूबसूरत-सी मेरी भाभी होती।" मोहन फिर बोला।

"तुम्हें इसके सिवा बात करने के लिए और कोई चर्चा ही नहीं है क्या?" रतन बाबू मीठी मुस्कान से बोले और कंघा करना समाप्त कर पास ही एक कुर्सी पर आ बैठे।

"सच दोस्त, अब ज्यादा दिन बहाना न कर सकोगे। मैंने भी दो-चार घर देख डाले हैं।" मोहन ने कह कर रतन बाबू के दिल में गुदगुदी पैदा कर दी।

"तुम मेरे सिर ही चढ़ गये हो—फँसा कर ही मानोगे। हाँ, कौन-कौन सी चीज़ें तालाश की हैं, मैं भी तो सुनूँ।" रतन का दिल खुशी से उछलने लगा।

"हाथ पर हाथ रखो। मानना पड़ेगा।" मोहन ने रतन के सामने हाथ फैला दिया और रतन खुशी के मारे उसकी हथेली पर अपनी हथेली रखकर उसको इस प्रेम-आवेश में दबाया जैसे अपनी प्रेयसी का हाथ दबा रहे हों। और आनन्द से चंचल से स्वर में बोले, "सच!"

"सच!" मोहन ने भी उनका हाथ दबाते हुए कहा।

"तो सुनाओ भी।" रतन बाबू आकुल उत्कण्ठा से पूछने लगे।

"सलोनी को तो जानते हो न?" गोरा रंग, पतला छरैरा बदन, नुकीली आँखें, गुलाब से ओंठ—वाह क्या बात है! और पढ़ी-लिखी है ही—इस साल एफ़० ए० की परीक्षा दी है। और पास होने में तो कौन शक कर सकता है।" मोहन बाबू ने एक पड़ोसी लड़की का वर्णन किया।

"हूँ!—और दूसरी कौन है?" रतन ने छा।

"दूसरी मनोरमा है, आप तो जानते ही हैं। अपनी प्रतिभा के लेए वह कालेज भर में प्रसिद्ध है। कालेज के लड़के उसके लिए गान देते हैं, लेकिन क्या मजाल जो किसी की तरफ़ वह आँख उठा कर भी देख ले। इस युग में ऐसी सदा ‐ारिणी लड़की मिलनी मुश्किल है। पूरी ब्रह्मचारिणी है। बदन इकहरे से कुछ ही ज्यादा है। स्वास्थ्य तो गज़ब का है। माँ-बाप भी सुधरे हुए विचारों के हैं।"

"ठीक !" रतन बाबू मुस्करा कर मनोरमा के विषय में भी अपनी आलोचना पी गये।

"और रत्ना तीसरी है। रङ्ग जरा साँवला है तो क्या—बाकी कद बड़ा अच्छा है। रूप खिल जाता है। उम्र भी मेरे ख्याल में २८ २६ से ज्यादा किसी प्रकार नहीं हो सकती। अब कहिए, मेरी कोशिश कामयाब है कि नहीं ?"

"क्यों नहीं।" रतन बाबू कह कर कुछ सोचने लगे।

"कीजिएगा न मेरे टेस्ट की तारीफ़। तीनों एक से एक ज्यादा। यानी अब अगर इंकार किया तो अच्छा न होगा।

"सा तो ठीक है मोहन बाबू। तुम्हारी कोशिशों के लिए धन्यवाद। लेकिन यार।" कहते-कहते रतन बाबू हलकी-सी मुस्कान मुख पर लाये और रुक गये।

"लेकिन क्या ?" मोहन ने पूछा।

"मोहन, तुम मेरे टेस्ट को तो जानते ही हो, इसीलिए मैंने अभी तक विवाह नहीं किया है। मैं कविता में शौक रखता हूँ और कवि के लिए बढ़िया साथी चाहिए।"

रतन बाबू फिर भी बात पूरी किये बिना ही रुक गये।

"इसमें क्या शक ! लेकिन मैंने तो आप की इच्छानुसार ही

साथी चुना है। सलोनी क्या आप के योग्य नहीं ? आप ही ने तो एक बार कहा था कि पतला लम्बा इकहरा छरेहरा बदन और नुकीली काली आँखें ! सलोनी में·· ···।" मोहन ने कहा।

"यह तो ठीक है। सलोनी बहुत अच्छी लड़की है, इसमें शक नहीं।"

"तो फिर आप क्यों हिचकते हैं, उसके साथ विवाह करते हुए ?"

"और तो सब ठीक है; लेकिन ज़रा बतीसी चौड़ी है। माफ़ करना मोहन··· वैसे किसी लड़की में कमी निकालना बहुत बड़ा अपराध है।"

"और मनोरमा तथा रत्ना की बाबत क्या जवाब है ?"

"मनोरमा तो बेहद मोटी है ···· बाप रे बाप ! ज़मीन हिल जाती है, जिस वक्त वह चलती है। उफ़ ! ना भाई, ना मनोरमा का तो नाम न लो और रत्ना ! इससे ईश्वर रक्षा करे। इस आबनूस के लट्ठे को घर में लाकर कौन पाउडर का ख़र्च सिर पर लादे !"

रतन बाबू ने अपनी व्यंग्यपूर्ण आलोचना से मोहन की सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। मोहन को तो बात चीत में आनन्द आ रहा था। वह बात-चीत को यों ही समाप्त कर देना नहीं चाहता था। उसने कुछ निराशा-सी प्रकट करते हुए कहा—"तो फिर आज यह जान कर ही उठूँगा कि आपका टेस्ट क्या है ? मैं जान लड़ा दूँगा आपके लिए। उम्र पहाड़ी झरने की तरह दौड़ी जा रही है और आप इसी प्रकार नीरस और अकेले जीवन की गाड़ी में बैठे यात्रा कर रहे हैं। यह नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता। एक बढ़िया भाभी तलाश करके दम लूँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

मोहन ने पूरा व्याख्यान दे डाला और रतन बाबू पर उसकी सच्ची मित्रता और ईमानदारी का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह बात को सरस बनाने की इच्छा से मज़ाकिया ढङ्ग से बोले—"तो आज फिर भीष्म-प्रतिज्ञा का नया उदाहरण पेश किया जायगा।"

"मैं मज़ाक से नहीं कह रहा हूँ। तुम्हारी पसन्द मैं जानना चाहता हूँ, फिर दिखा दूँगा कि मैं क्या कर सकता हूँ। हाँ, तो तुम अपनी पसन्द तो बता दो।" मोहन ने रतन बाबू को फिर एक लालच भरा मौक़ा दिया कि वह अपनी बात को मोहन के सामने खुले रूप में रख दे।

"भाई अपना अपना टेस्ट है। कोई अगर पूछे कि क्यों ? तो इसका कोई उत्तर नहीं।"

"कोई पूछने वाला है कौन और कवि से तो पूछने की हिम्मत किसी में हो ही नहीं सकती। कवि तो वह धुर्रे उड़ा दे कि पूछने वाला सात जनम याद रखे। चार लाइनें किसी पर लिख दे तो उसे कहीं मुँह दिखाने को जगह न रहे।" मोहन ने रतन को और भी उकसाया।

"यह तो तुम कवि की बहुत ज़्यादा कीमत लगा रहे हो। ख़ैर! हाँ, भाई, मैं तो ऐसी संगिनी चाहता हूँ कि मेरे मानस के सुप्त सपनों को किरन-स्पर्श के समान जगा कर जो मेरे दिल की कली खिला दे। मेरे मानस के पारदर्शी मुक्ताओं की अमिट आकांक्षाएँ लच-लच होकर जिसकी मुस्कान से बिखर पड़ें! मेरी निद्रा की बेसुधी, मेरी पलकों की रंगीनी, मेरी पुतलियों की बेताबी, और मेरी कम्पन की स्वर-लहरी जिसके संकेतों पर गा उठे।" रतन बाबू ने यह गद्य-काव्य इतनी भावुकता की शैली में कहा कि मोहन ख़ाक-पत्थर कुछ न समझते हुए भी 'वाह! वाह! कर उठा।

"रतन ! रतन ! वाह भावुक कवि रतन ! सचमुच, तुम्हारे लिए कोई ऐसी ही संगिनी चाहिए। मैं तो आज समझा हूँ कि इस नन्हें से दिल में कितनी बड़ी बगिया लगी है। खूब !" मोहन की प्रशंसा सुनकर रतन अब संगिनी के शरीर-वर्णन पर आये। वह कहने लगा—"सूरत-शकल वैसे मैं तुमको बता ही चुका हूँ, फिर भी दो-चार शब्द कह देने में हानि ही क्या है ! बस आँखें बड़ी-बड़ी नुकीली और ज़रा ऐसी ! दाँत पतले बारीक और ज़रा इस तरह ! बाल उलझे हुए और गालों पर ज़रा लहराते हुए !"

"बिल्कुल ठीक। एक कवि को इसी प्रकार की कोमल कन्या की आवश्यकता है। कवि संसार के सामने अपने जिगर का खून निकाल कागज़ पर रख देता है और उसे ऐसी भी पत्नी न मिले तो वह किसके सहारे जिये। फिर भी भाई, क्या तुम अपने स्टैण्डर्ड से ज़रा भी नीचे नहीं उतर सकते।" मोहन ने सहानुभूति मिश्रित वाणी में प्रश्न किया।

"तुम मुझे मजबूर न करो, मोहन। इससे कम कम की बात सोचने से दिल फटने लगता है। रतन बाबू ने व्यथित वाणी में उत्तर दिया। सलोनी तो तुम्हारी पसंद के बहुत करीब है। है तो लेकिन ....रहने भी दो। मोहन मुझे विवश मत करो।"

"तब तो मेरा सारा परिश्रम बेकार गया। मैंने समझ लिया था रतन भाई कि तुम उस को ज़रूर पसंद कर लोगे। मेरे सारे किये-कराये पर पानी फिर गया।" मोहन ने उदासी से कहा।

"तो क्या तुम उसके बाप से मेरे मामले में सब-कुछ तय कर बैठे हो ! मुझ से पूछ तो लेते। क्या उस का बाप तैयार हो गया ?" रतन उस प्रश्न में अपने सुख की चाह प्रकट कर गये। वह सलोनी

को चाहते थे।

"बाप से तो मैं मिलने की हिम्मत भी नहीं कर सकता। वह बड़ा जल्लाद है। वह भला कैसे मान सकता है—ब्राह्मण ठहरा।"

"तो फिर तुम्हारे किये-कराये पर पानी कैसे फेर दिया मैंने? सूत न कपास जुलाहे से लट्ठम लट्ठा।" रतन अप्रतिभ से होकर बोले।

"तुम पहले तैयार तो हो जाओ?"

"उस का बाप अगर तैयार न हुआ?"

"बाप से पूछता कौन है। सलोनी पर ही डोरे डालेंगे। कवि पर तो वह मरती है। जहाँ तुम्हारी दो-चार कविताएँ सुनाईं कि लट्टू हो जायगी।" मोहन हँसते हुए बोला।

"हुश! पागल।" रतन ने बात मज़ाक में टाल दी। लेकिन सलोनी ने उनको कविताएँ लिखने के लिए काफ़ी धड़कन दे दी।

× × × ×

रतन बाबू सलोनी पर कुछ-कुछ तो पहले ही मरते थे, मोहन की प्रेरणा और प्रयत्नों से वह और भी प्रेम में फँस गये। सलोनी ने रतन को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने एक प्रेम-काव्य भी लिख डाला। सलोनी को कविता से प्रेम था और वह यह भी जानती थी कि रतन कविता करते हैं। किसी एक सहेली के साथ वह एक दो बार रतन के पास आई भी थी और कविताएँ भी उसने रतन बाबू की सुनी थीं।

एक दिन सलोनी उनके कमरे में आ गई। और बढ़िया बात तो यह रही कि वह अकेली थी। रतन बाबू का दिल छलाँगें

मारने लगा। आज उनके लिए अपनी वेदना निवेदन करने का ख़ास मौक़ा था। किस्मत की बलिहारी! सलोनी अकेली! गर्म धड़कन से रतन बाबू ने उठकर उसका स्वागत किया। और उसको कुर्सी पर बैठाया। स्वयं पलँग पर बैठ गये। बात-चीत के दौरान में दोनों कविता पर उतर आये और रतन ने मिन्नत-भरी आँखों में चाह-भरी निराशा के से आँसू भरकर, सातों सरगम घसीट कर राग अलापना शुरू किया—

आह कितना दर्द मेरे दिल में है!
जल रहा है जो पतंगे की तरह—
मेरे सिवा बताओ तो……
अरे बताओ तो सलोनी!
कौन उस महफ़िल में है?

रतन बाबू को गाते देख कर सलोनी को हँसी आ गई। वह समझ ही न पाई कि उनको हुआ क्या है! गाना रतन से आता न था और बहुत ही बेसुरा गाया। उनकी वेदना-वर्णन-शैली निराली थी। ओठों पर आहें और आँखों में चाहें, स्वर-स्वर में निराशा का भार और शब्द-शब्द में प्यार, पर सलोनी कुछ न समझी। रतन बाबू ने कई बार गीत की पंक्ति-पंक्ति दोहराई।

जब रतन बाबू कहते थे कि "कौन इस महफ़िल में है…· अरे सलोनी बताओ तो·· " तो ओठों पर अपना कलेजा निकाल कर रख देते थे। सलोनी ने गीत की तारीफ़ की, "गज़ब का गीत है। आप तो गा भी बहुत अच्छा लेते हैं! मुझे तो आज ही मालूम हुआ।"

"आप ही की प्रेरणा है सलोनी। वरना इस दास को क्या

आता है।" रतन बाबू ने धन्यवाद दिया और फिर गाना शुरू किया—

हाय यह पीड़ा हमारी कौन समझेगा।
इस हृदय की वेदना को कौन जानेगा।
तुम अगर पहचान लेती दर्द यह मेरा।
दूर हो जाता हृदय का घोर अँधेरा।
हाय यह तममय बटोही कौन गायेगा।
है जिगर में घाव वह कितना सतायेगा।
कौन आकर घाव में नश्तर लगायेगा।

गाना गाकर रतन बाबू ने एक आह भरी और पलंग पर शिथिलता से लेट गये। उदास मुख, दर्द-भरी आँखें, शिथिल कम्पन और उसी प्रकार कुछ प्रेम, वेदना, निराशा, विरह, मिलन की अवस्था में वह अपने को अनुभव करने लगे।

सलोनी बड़े धीरज और शौक के साथ यह सब कुछ देखती रही।

"आपका जी कैसा है, आप तो बहुत दर्द महसूस करते हैं।"

"लेकिन इसे समझता कौन है? हृदय में बड़ा दर्द है। आह!" रतन बाबू लेटे ही लेटे बोले।

"दर्द है।"

"हाँ।"

"तो किसी डाक्टर को बुलाएँ, सचमुच आपकी हालत खराब है।

"डाक्टर क्या तुम नहीं हो सलोनी।" रतन बाबू ने और भी बात को साफ़ कर दिया, पर वह कुछ भी जैसे न समझी हो।

"नहीं, आप ग़लती कर रहे हैं, मैंने तो इसी साल एफ० ए० की परीक्षा दी है और मैडिकल साइड में जाने का ख़याल भी नहीं है।" उसने बड़ी भोली बनते हुए रतन बाबू की बात को यों ही उड़ा दिया।

रतन बाबू उठ बैठे और सँभलकर पलँग पर बैठ गये। सलोनी उनके चेहरे पर शीघ्रता से दौड़ने वाले भावों की भीड़-भाड़ देखने लगी। रतन बाबू को वह समझ तो गई थी, लेकिन अच्छी तरह तंग करना चाहती थी। कालेज की शरारती लड़की जो ठहरी। रतन बाबू उसकी कठोरता से तिलमिला रहे थे। वह यह तो अन्दाज़ लगा बैठे थे कि सलोनी कुछ-कुछ समझ गई है और शायद एक-दो बार और प्रयत्न करने से रास्ते पर आ जाय।

"तुम डाक्टर बन जाओ, सलोनी।" रतन बाबू ने कुछ स्वाभाविक ढंग में कहा।

"मैंने साइंस नहीं ली थी और आर्ट-साइड में मैं अच्छी चल सकती हूँ।" उसने फिर बात को ग़लत समझने का बहाना किया।

"ओह सलोनी, तुम मेरी बात समझ कर भी नहीं समझ रही हो! तुम इतनी अनजान मत बनो। क्या तुम मेरी बात सचमुच नहीं समझ रही हो?" रतन बोले।

"समझ तो रही हूँ!"

"क्या समझ रही हो?" रतन बाबू ने प्रश्न का मन-चाहा उत्तर लेना चाहा।

"यही कि आप को कोई तकलीफ़ है। आप बीमार [illegible]।" सलोनी बोली।

"हाँ, दिल का दर्द है। मैं बीमार हूँ। तुम इस रोग की दवा दे सकती हो सलोनी।" रतन की आवाज़ में विनय बज उठी।

"अपने सिर की क़सम, मैं दवा वगैरह के बारे में कुछ नहीं जानती। अगर कुछ भी जानती तो आपको इस प्रकार दुखी न देखती। कौन ऐसा कठोर आदमी है, जो अपने महल्लेदार को इस प्रकार कष्ट में देखे।"

"तुम सरासर मुझे तड़पा रही हो......मैं साफ़ कहे देता हूँ तुम बड़ी कठोर हो, सलोनी।" रतन बाबू काँपती हुई आवाज़ में कह गये।

"इसका मतलब?" सलोनी ने आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए पूछा।

"मतलब? मतलब क्या सचमुच तुम नहीं समझी?"

"नहीं, आप साफ़-साफ़ कहें, पहेली-सी न बुझायें।" सलोनी बोली।

"मै तुम को प्रेम करता हूँ, सलोनी!"

"आप कैसी बातें करते हैं? मैं तो आप को बड़ा शरीफ़..."।" सलोनी रोष में बोली।

"सलोनी......सलोनी। मेरे स्वप्नों की रानी, सलोनी। क्या तुम मेरी संगिनी नहीं बन सकती?" रतन उत्तेजित-से होकर बोले और सलोनी के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"अलग हटिये। गंगाजी कसम, अगर पिताजी ने सुन लिया तो ग़ज़ब हो जायगा। हम सनातन-धर्मी हैं। रामजी की कसम, ऐसा सोचिए भी मत।" सलोनी उठने लगी और इतने ही में मोहन खाँसते हुए अन्दर आ गया। रतन बाबू ने उसे बैठा लिया।

सलोनी ने मोहन बाबू को जो अन्दर आते देखा तो वह बड़े संकोच में पड़ी। उसे तब तो और भी लज्जा अनुभव हुई, जब मोहन ने मुस्कराते हुए रतन को बधाई दी और पास बैठ गया।

"तो फिर मिठाई खिलाइये न रतन दोस्त।" मोहन ने मुस्कराते हुए कहा। सलोनी इस व्यंग्यभरी मुस्कान से बहुत व्यथित हुई और एकदम रोष के साथ उठी तथा कमरे से बाहर हो गई। रतन और मोहन ने उसे रोकने का प्रयत्न भी किया, लेकिन उसने उनके अनुरोध का उत्तर क्रोध-पूर्ण मौन से ही दिया। दोनों देखते के देखते रह गये।

"तुम भी अजीब आदमी हो, मोहन। किसी भले घर की लड़की को देख-भाल करके तो बातें किया करो।" रतन ने खिन्न होकर कहा।

"क्षमा करो रतन भाई, ग़लती हुई। मुझे क्या मालूम था कि मामला इतना संगीन हो चुका है। ख़ैर, अब कभी न आऊँगा। ऐसे मौक़ों पर।" मोहन बोला।

"बना-बनाया काम बिगड़ गया।"

"क्या तय हो चुकी थीं सारी बातें?"

"थोड़ा-सा तकल्लुफ़-भर रह गया था। और अपने मुँह से औरत 'हाँ' तो कभी कर ही नहीं सकती। तुमने रेड़ लगादी।"

"मुझे इशारा ही कर दिया होता, मैं यहाँ आता ही नहीं।" मोहन ने कहा।

थोड़ी देर इसी विषय की चर्चा होती रही। रतन समझ रहे थे कि सलोनी तैयार ही हो गई है। आगे शायद बात पक्की भी हो सकती है। औरत ज़रा खुशामद कराना चाहती है। खुशामद करने में वह अपने को कुशल समझते थे। और कविताओं की प्रशंसा भी सलोनी के मुँह से वह सुन चुके थे, इसलिए अभी भी आशा थी कि सलोनी दस-बीस बार समझाने से मान अवश्य जायगी।

रतन ने फिर कई बार कोशिश की, पर सलोनी कभी उनके पास न आई। दो-चार सप्ताह तक इतना अवश्य हुआ कि जब-तब वह रतन को देखकर मुस्करा भर देती थी। रतन बाबू इसी को ग़नीमत समझते थे। कई बार इस मुस्कान का अर्थ उन्होंने प्रेम का चढ़ता हुआ रङ्ग भी लिया। कई बार रतन ने कमरे पर आने के लिए सलोनी से इशारे से अनुरोध किया। उसने कई बार तो हँस कर टाल दिया, पर जब बात रङ्ग पकड़ती हुई मालूम हुई तो उसने साफ़ इंकार कर दिया।

हारते हुए जुआरी की तरह रतन बाबू ने कई दाव खेले, पर जब हार ही भाग्य में लिखी हो तो कोई क्या करे। कविता, लेख, संकेत सभी के द्वारा उन्होंने विरह-निवेदन के करुणा-गीत गाये, वेदना के सुरे-बेसुरे राग अलापे, पर सब बेकार। पत्थर की मूर्ति सलोनी ने पसीज कर प्रेम-वरदान न दिया। कवि का रोदन सुन कर पत्थर भी बहते सुने गये है, झरने भी ठहरते सुने गये हैं, पेड़ भी हिलते सुने गये हैं; पर सलोनी टस से मस न हुई। आखिर रतन निराश हो गये।

एक दिन मोहन ने समझाया कि रत्ना या मनोरमा पर ही सब्र करें, उन दोनों में से एक न एक ज़रूर फँस जायगी। अन्दर से औरत की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव करते हुए भी वह एक आह भर कर बोले,—"मोहन भाई, सलोनी को दिल में बसाया था। वही मेरी उजड़ी फुलवाड़ी में बहार बन कर आई थी, उसी ने इसे उजाड़ दिया। आह! इन आँखों में उसी का रूप समाया हुआ है। इन पुतलियों में वही घुसी हुई है। मोहन भाई, मनोरमा या रत्ना अब इन आँखों में न बस सकेगी।"

"यह तो ठीक है रतन भाई, पर जीवन को गलाना बेकार है। कोशिश तो करो कि सलोनी हृदय से निकल जाय।" मोहन ने सहानुभूति पूर्ण सम्मति दी।

"न मनोरमा और न रज्ञा या दोनों मिल कर ही सलोनी को मेरे हृदय से निकाल सकती हैं।"

"यह कुछ न कहो! उस सलोनी की क्या मजाल है कि मनोरमा या रज्ञा के सामने एक घड़ी भी ठहर सके। सलोनी मे दम कितना है जो मनोरमा का एक लप्पड़ सह सके। सच कहता हूँ, मनोरमा या रज्ञा की शकल देखते ही तुम्हारे दिल का कमरा खाली करके भागती नज़र आयगी सलोनी।" मोहन ने बड़े गौरव के साथ कहा।

"ना भाई, यह न होगा।"

"होगा कैसे नहीं। एक कवि का जीवन, मैं, इस प्रकार नष्ट न होने दूँगा। बस, अब मैं कुछ न कुछ करके ही रहूँगा।" मोहन ने विश्वास दिला दिया।

रतन बाबू को ज़माने की ऊँच-नीच, इन छबीली छोकरियों की बेवफ़ाई और मनुष्य के प्रेम का उतार-चढ़ाव समझा कर, रतन को सलोनी के स्वप्न देखते हुए छोड़ कर मोहन चला गया।

रतन ने भी प्रयत्न किया और मोहन ने भी कोई बात उठा न रखी, पर अभी तक भी रतन बाबू को कोई उपयुक्त पात्र न मिला। एक लड़की उनके सिर भी पड़ी, पर मोहन और रतन दोनों ने उसे नापसन्द किया। सलोनी का विचार रतन ने अपने दिल से निकाल दिया। मनोरमा और रज्ञा के लिए भी रतन के मुँह में बहुत दिन तक पानी आता रहा। रतन बाबू उनके लिए भी कुछ दिन

तक आहें भरते रहे, पर वे 'आहें' भी कुछ असर न दिखा सकीं।

चारों ओर से उनको निराशा का ही सामना करना पड़ा। अब किया क्या जाय। औरत की आवश्यकता उनको इस समय बेहद महसूस हो रही थी और इस आवश्यकता की पूर्ति होती नजर नहीं आ रही थी। मोहन से सलाह ली गई। उसने कितने 'मैरिज ब्यूरो' और 'जातपात तोड़क मण्डल' का चक्कर भी रतन बाबू से करवाया, लेकिन कोई लाभ न हुआ।

जिसको किसी चीज़ की तलाश होती है, वह तलाश करके ही दम लेता है। रतन को औरत की तलाश और शीघ्र ही विवाह करने की धुन थी। अब उन्होंने समाचार-पत्रों के विवाह-विज्ञापन देखने शुरू कर दिये। एक दिन 'हैरल्ड' के मैट्रीमोनियल में उन्होंने दिलपसन्द लड़की का विज्ञापन पढ़ा। दिल सीने से उछल-उछल पड़ने लगा। फ़ौरन एक प्रार्थना-पत्र डलवा दिया और किस्मत जो चेतनी थी कि एक ही सप्ताह बाद उत्तर आ गया कि हम आपको देखने के लिए आ रहे हैं।

× × × ×

७-८ दिन तक लड़की के पिता का कोई पत्र न आया। रतन बाबू को बड़ी बेचैनी हुई। दिल योंही कभी-कभी धुक-धुक करने लगता है और अनेक आशङ्काएँ मनुष्य कर बैठता है। यही रतन बाबू की अवस्था हो गई। सोचा, कहीं मामला गड़बड़ा तो नहीं गया। दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है। इस मामले को बड़ा सँभाल कर वह अपने हाथ में लिये थे। यह लड़की सलोनी से कहीं अच्छी थी और कवि भी थी।—'खूब गुज़रेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।' यह सोचकर ही रतन फूले न समाते थे।

८-६ बजे होंगे रतन बाबू मुँह लटकाए चिन्तित से बैठे थे, मोहन भी आ गया।

"क्या मामला है, उदास बैठे हो ?"

"यार उसका कोई समाचार ही नहीं आया। न हो, तो जाय भाड़ में। आदमी साफ़ कह दे या फिर ज़बान का सच्चा हो।" रतन बाबू खिन्नता तथा रोष में बोले।

"इतना घबराना न चाहिए। कोई कारण हो गया होगा। मामला बना-बनाया है।" मोहन ने रतन को शान्त किया।

"फिर भी, कोइ हद भी हो, इतने दिन हो गये !" रतन बोले।

"कई बार फ़ुरसत न मिलने के कारण याद नहीं रहा करती। गिरस्ती में सैकड़ों काम-धंधे लगे रहते हैं।"

"तो एक पत्र और लिख दूँ—याद दिलाने के लिए।" रतन ने मोहन से सलाह मांगी।

"क्या लिखोगे ?"

"यही कि आप में से कोई अभी इण्टरव्यू के लिये नहीं आया। टूर पर जाने वाला हूँ। अगर चला गया तो आप को निराश लौटना पड़ेगा। फिर न जाने कितने दिन लग जायें। इसलिए शीघ्र उत्तर देने का कष्ट करके अनुग्रहीत कीजिए।"

"किस टूर पर जा रहे हो ?" मोहन ने हँस कर पूछा।

"योंहीं—ज़रा पता चले कि हम कितने व्यस्त हैं।" अपनी अक्ल की बड़ाई करते हुए रतन ने कहा।

"पागल हुए हो। अगर उसे मालूम हो गया कि कितने ही दिन तक घर से बाहर रहना पड़ता है तो वह कभी भी शादी न करेगी। लड़की तो चाहती है कि शादी होते ही पति के कलेजे से चिपटी रहे। आज कल की लड़कियाँ पति की गैर हाज़िर

बिल्कुल पसन्द नहीं करतीं।" मोहन ने मनोविज्ञान का ज्ञान झाड़ना शुरू किया।

"सच? तब तो मैं बड़ी भारी ग़लती करने पर उतारू हो गया था। तुमने खूब बताया।" रतन बाबू ने रोम-रोम से मोहन का धन्यवाद किया।

"ऐसी ग़लती कभी न करना।" मोहन ने उन्हें समझाया। और दरवाज़े की ओर जो देखा तो एक साहब उनकी तरफ़ ही बढ़ते हुए आ रहे हैं। वह साहब उनके पास आकर पूछने लगे, "कृपा करके रतन बाबू का मकान बता सकते हैं?"

"हाँ, कहिए क्या काम है?" मोहन ने पूछा।

"मिलना है।" वह बोला।

"आप ही रतन बाबू हैं।" मोहन ने रतन की ओर संकेत किया।

"आप? – नमस्ते।" वह बोला

"नमस्ते।" रतन ने उत्तर दिया।

"आज आप से कोई सज्जन मिलना चाहते हैं। दो बजे तक आयेंगे। फिरोज़पुर से आये हैं।" वह एक ही साँस में सब-कुछ कह गया।

"उनके साथ और कौन है?" मोहन ने पूछा।

"यह तो मैं नहीं कह सकता।" उसने रहस्य-भरी मुस्कान से उत्तर दिया।

"फिर भी तो।" रतन बोले।

"यह न होगा।" वह फिर उसी प्रकार हँसा और नमस्ते करके चला गया।

"ठीक! बन गया काम। वह ज़रूर होगी साथ में।" मोहन मुस्करा कर बोला।

"कौन?" रतन समझते हुए भी, रस लेने के लिए, अनजान बन कर बोले।

"अरे वही······वही, जिसकी मुहब्बत में रात को तारे गिना करते हो।"

"हुश!" रतन हँस दिये।

"सच, तुम्हारी कसम!"

"तुमने समझा कैसे?"

"अरे, उसकी भेद-भरी मुस्कान नहीं देखी और उसने उसका नाम बताने से भी इंकार कर दिया।" मोहन ने कहा।

"तुम भी यार खूब ताड़ने वाले हो।"

"अब ज़रा अक्ल से बातें करना और वह रोब जमाना कि बस, काम बन जाय।"

"तुम कहाँ रहोगे उस वक्त? तुम साथ रहना, बड़ी मदद मिल जाया करती है ऐसे मौकों पर।"

"अच्छी बात है, तुम कमरे में सफ़ाई कर लो, सामान ठीक कर लो। मैं भी दो घण्टे तक आ जाऊँगा।" कहकर मोहन कमरे से बाहर हो गया। और रतन कुछ क्षण के लिए अपनी भावी पत्नी से 'इन्टरव्यू' करने के विचार में डूब गये।

रतन बहुत देर तक इण्टरव्यू के स्वप्न देखते रहे। वह इन विचारों में इतने मस्त हो गये कि आँखें बन्द किये कुर्सी पर ही सो-से गये। टन्न-टन्न - घड़ी ने १२ बजा दिये। आवाज़ सुन कर रतन की नींद टूटी और घड़ी की तरफ़ देख कर उस के मुँह से सहसा निकल पड़ा—"उफ! १२ बज गये।" वह तुरन्त कुर्सी से

उठे, कपड़े बदले और सामान एक तरफ़ रख कर कमरे की सफ़ाई में जुट गये।

वह बड़ी सफ़ाई से कमरे में झाड़ू लगाने लगे और साथ ही अपनी पत्नी के बारे में तरह-तरह की बातें सोचने लगे। उनके दिमाग़ की आँखों के सामने एक सुकुमारी बाला की मुस्कराती तस्वीर नाचने लगी। एक गोरी-गोरी लड़की है, उसकी आँखें रतन से बारबार मिलती हैं और मिलते ही वह लजाकर उनको बन्द कर लेती है। बारीक भवें कानों को छूती है, पुतलियाँ काली और चंचल—रतन के लिए आतुर!

रतन भावी पत्नी के लिए इतना महसूस करने लगे कि उन्हें ऐसा लगा कि वह उससे बात भी करने लगी है। छेड़-छाड़ भी शुरू हो गई। चुहल भी होने लगी। दोनों हँसी के फव्वारे की बूँदों से जैसे तर हो गये। 'ओह मेरी रानी!' रतन के मुँह से मौन शब्द निकल पड़े और वह जैसे खिलखिला कर भाग गई। इन्हीं नशीले विचारों में डूबे-डूबे रतन ने कमरे की सफ़ाई कर डाली। और घड़ी में देखा तो पौन बज चुका था। थोड़ी देर के लिए दरवाज़ा खोल दिया गया, जिससे गर्द बाहर निकल जाय।

रतन ने फिर दरवाज़ा बन्द करके किताबें, बिस्तर, कुर्सियाँ, मेज़, खिड़कियाँ दरवाज़े सब झाड़ डाले और सामान को सजा कर रखना शुरू किया। धड़कते दिल से मेज़पोश, पलंग की चादर, तकिये का गिलाफ़ बदल डाले गये। मेज़ पर पुस्तकें सँभाल कर रखी जाने लगीं। अँगीठी पर फूलदान, धूपदान, आयना आदि सँभाल-सँभाल कर रखे गये। रतन बिजली की तेज़ी से काम कर रहे थे और घड़ी की सुइयाँ उनकी फुर्ती से भी ज्यादा तेज़ी से दौड़ी जा रही थीं।

दरवाज़े के किवाड़ बन्द थे। रतन काम कर रहे थे, घड़ी की सुइयाँ दौड़ रही थीं। कई बार रतन को इतना बुरा लगा कि वह घड़ी बन्द कर देने को भी तैयार हो गये। न चलेगी, न समय का पता चलेगा, कम से कम घबराहट तो न होगी। सवा बज चुका था। किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। रतन का कलेजा धक से रह गया वह आ गई है शायद 'इण्टरव्यू' के लिए। पौन घंटा पहले! शायद घड़ी सुस्त हो। लेकिन यह तो इतनी तेज़ दौड़ रही है।

फिर खटखट हुई, रतन ने किवाड़ न खोले। वह सोच भी न पा रहे थे कि क्या करें। मोहन भी पास नहीं है। उफ़! कैसा बुरा समय आ गया है। अरे, इतना पहले आने की क्या आवश्यकता थी। फिर खटखट हुई। और बड़ी बारीक आवाज़ आई—"ज़रा दरवाज़ा खोलिए!" आवाज़ ज़नानी थी—तकल्लुफ़-भरी! रतन समझ गये कि वही है—वही! बड़ी दुविधा में पड़े—खोलूँ या न खोलूँ। इस वेश में देखेगी तो क्या कहेगी और साथ ही उसका बाप भी हुआ तो ग़ज़ब हो जायगा।

रतन बाबू को भगवान में कभी विश्वास नहीं रहा था। देवताओं की वह सदा निन्दा किया करते थे; पर आज बार-बार भगवान से चाह रहे थे कि भगवान अपनी अनन्त शक्ति से कुछ ऐसी माया कर दें कि यह अब वापस हो जाय और एक घण्टे बाद फिर आ जाय। रतन ने कई बार अपने दिल में कहा—ऐ भगवान शंकर, अगर आज मेरी अरदास पूरी हो जाय तो जन्म-भर तुम्हारा दास रहूँगा। आज तेरे भक्त की परीक्षा की घड़ी है। तेरे सिवा कौन है जो इस आड़े वक्त में काम आवे। विष्णुजी, तुम ही इस वक्त काम आ जाओ। कुछ तो अपना चमत्कार दिखाओ।

दरवाज़ा फिर खटखटाया गया। न भगवान शंकर ने रतन की कोई सहायता की और न भगवान विष्णु ही अपना कोई चमत्कार दिखा सके। रतन घबरा गये। अगर नहीं खोलता हूँ तो ये लोग नाराज़ होकर चले जाते हैं और फिर बना-बनाया काम मिट्टी हो जायगा। मोहन भी मुझे ही उल्लू बनायेगा। अगर दरवाज़ा खोल कर इनको अन्दर बुलाता हूँ तो शकल देखकर यह समझेंगे कि मेरे पास नोकर भी नहीं है और इसके सिवा मेरी सुन्दरता भी तो इस तरह ये लोग कुछ भी न देख पायेंगे।

"अजी ज़रा खोलिए भी। मैं कितनी देर से खड़ी हुई हूँ। सो तो नहीं रहे हैं।" बड़ी अनुरोध-भरी वाणी रतन के कानों में पड़ी और उनका दिल और भी अधिक उछलने लगा। इन को निश्चय हो गया कि वही है वही—बस अब करें तो क्या करें। एक बात सूझी। जल्दी-जल्दी शरीर की धूल झाड़ी फौरन गन्दे कपड़े उतार डाले और साफ़ कपड़े पहन लिए। बालों की धूल झड़ी या नहीं झड़ी, लेकिन उन में कंघी ज़रूर कर ली।

थोड़ी देर बाद फिर खटखट हुई। और साथ में मर्दानी आवाज़ भी आई। रतन ने कान लगा कर सुना, कोई कह रहा है—आप को काफ़ी देर खड़े हुए हो गई। आप की लगन खूब है। मैं अभी खुलवाये देता हूँ। रतन ने आवाज़ सुनते ही दरवाज़े पर कान लगा कर आवाज़ से आदमी को पहचानना चाहा। उन्होंने फिर सुना कि जनानी और मर्दानी आवाज़ घुल-मिल कर बातें करने लगी हैं। उन्होंने फिर कान लगाये।

"यार, खोलो भी, कितनी देर हो गई। यह बेचारी भी परेशान हो रही हैं। तुमसे कोई भेंट करने क्या कोई आता है, अपनी जान आफ़त में डालता है।"

आवाज़ सुनते ही रतन को पक्का यक़ीन हो गया कि बाहर खड़ी हुई स्त्री उनकी भावी पत्नी है और आवाज़ देने वाला मोहन। उनके दिल की धड़कन बड़ी तेज़ हो गई। रतन बाबू ने काँपते हुए हाथों और उछलते हुए दिल से किवाड़ें खोल दीं। सामने देखा—कन्या-पाठशाला की माई खड़ी पान चबा रही है! और मोहन भी खड़ा दरवाज़े की ओर ताक रहा है!

इतनी मेहनत के बाद भी कन्या-पाठशाला की माई! रतन का रोम-रोम जल उठा। वह क्रोध-भरी आवाज़ में बोले—"क्या है?"

"बाबूजी, इस रजिस्टर पर दस्खत करने हैं, बड़ी देर से खड़ी हुई हूँ।" कह कर माई ने रजिस्टर आगे बढ़ा दिया और रतन बाबू ने अपने भाग्य को सराहते हुए क्रोधपूर्ण भाव से हस्ताक्षर कर दिये। वह तुरन्त चली गई।

"जल्दी स्नान कर लो। वह आने ही वाले होंगे।" मोहन ने सलाह दी। रतन बाबू तेल-साबुन लेकर स्नान करने चले गये। स्नान कर, कपड़े बदल, तेल-फुलेल लगा, वह कमरे में 'इण्टरव्यू' करने के लिए तैयार होकर बैठ गये। बैठे-बैठे चार बज गये। पर कोई भी न आया।

"बड़ी देर हो गई, शायद अब कोई नहीं आयगा।" मोहन बोला।

"आयगा कौन? इस कमबख्त माई ने कुसुगनी तो पहले ही कर दी।" रतन बाबू ने समर्थन किया।

"और राह देखी जाय क्या?" मोहन ने पूछा।

"बेकार है।" रतन बोले।

और पाँच बजे तक राह देख कर दोनों निराश हुए से उठ गये।

× × ×

रतन बाबू ने दो-तीन दिन तक उनकी राह देखी, पर कोई न आया। आशा छोड़-सी दी। वह सज्जन भी कभी न मिले जिन्होंने आकर समाचार दिया था। रतन को बड़ा अचम्भा और मलाल हुआ। कभी-कभी क्रोध भी आया। अगर न आना था तो साफ़-साफ़ कह देते या अर्ज़ी पर विचार ही न किया होता। अपनी लड़की के क़ाबिल अगर उनको न समझा था तो उत्तर ही न देते।

'इण्टरव्यू' के लिए कमर कस कर तैयार होने के बाद चौथा या पाँचवाँ दिन था। रतन बाबू सुबह की सैर करके छड़ी घुमाते-हुए लौट रहे थे, मकान मालिक के लड़के ने बताया कि कोई साहब आप से मिलना चाहते है, साथ में एक महिला भी है। लड़के ने उन को रतन बाबू के कमरे में बैठा दिया था। सुनते ही रतन आशातीत प्रसन्नता से खिल उठे, इधर ज़रा नज़र बचा कर जो देखा तो मालूम हुआ, मोहन उनसे घुल-घुल कर बातें कर रहा है।

महिला को साड़ी का छोर भी उन्होंने देख लिया। हृदय आनंद और आश्चर्य से उछलने लगा। रतन बाबू कल्पना में किलोलें से करते हुए प्रसन्नता के मारे रोमांचित हो गये। "वह" भी है। मोहन की बात ठीक निकली। कई बार प्रयत्न किया कि इशारे से मोहन को बुलाकर सूरत-शक्ल के बारे में पूछें, पर वह बातों में इतना व्यस्त था कि तीन-चार मिनट तक उसने रतन की तरफ़ मुँह ही नहीं किया। कितनी एडवांस फ़ैमिली है! किस्मत खुल गई!

सलोनी अपने को न जाने क्या समझती है। अच्छा हुआ, पिण्ड छूटा। कितने उच्च विचार हैं। स्वयं ही मिलने आई हैं। स्वयं-वर तो इसे ही कहते हैं। यानी ऐसी शादी को हम लवमैरिज और

वैदिक विवाह का आदर्श मिलान कह सकते हैं। जब लड़कियाँ स्वयं ही अपने पतियों का चुनाव करेंगी, तभी भारत को स्वराज्य मिलेगा! नारी आन्दोलन में हमारा यह विवाह एक घटना ही गिना जायगा। इससे अधिक नारी-स्वतंत्रता और क्या होगी कि बाप के साथ लड़की भी 'इण्टरव्यू' के लिए आये! धन्य हैं इसके पिताजी!

'इण्टरव्यू' की तैयारी करते हुए रतन बाबू न जाने क्या क्या सोच गये। अपने भाग्य की उन्होंने सराहना की। लड़की के माता-पिता की उन्होंने प्रशंसा की। लड़की के साहस, स्वतंत्र विचार और आदर्श ज्ञान पर उन को गर्व हुआ। सलोनी, रत्ना, मनोरमा अब रतन बाबू की नवीन पत्नी के सामने तुच्छ जँचने लगीं। उन को इस विवाह से सलोनी को यह बताने का मौका भी मिल जायगा कि कैसे-कैसे एडवांस घराने और कैसी-कैसी बढ़िया लड़कियाँ रतन बाबू से रिश्ता करने के लिए आतुर रहते थे। रतन को अस्वीकार करके सलोनी ने मूर्खता की, यह भी रतन अब सलोनी को जतलाना चाह गये।

तैयार हो कर रतन बाबू 'इण्टरव्यू' के मैदान में आ डटे। मोहन ने ज़रा मुस्करा कर उनके कमरे में ही उनका स्वागत किया। सोहन कमरे में घुसे तो सामने डाढ़ी वाले एक सज्जन विराजमान पाये। सोच गये की यही पिताजी हैं। और पास ही उनके एक महिला सुशोभित थी, जिनका मुख वह न देख पाये और न हाथ पैर ही उसके नज़र आये। खूब कितनी समझदार है। शर्म भी रह जाय और 'इण्टरव्यू' भी हो जाय! आखिर बड़े घर की लड़की है। इसी को कहते हैं उच्च शिक्षा। बैठने का पोज़ भी कितने कमाल का है कि शरीर का एक बाल भी नज़र न आये। इन

होशियारियों, तरीकों, मगभज़दारियों और हिम्मतों को देख कर रतन बाबू अपनी भावी पत्नी के प्रेम में बुरी तरह फँस गये।

रतन को देखते ही डाढ़ी बोली, "आप ही रतन बाबू हैं?"

"जी हाँ, नमस्ते।" रतन बाबू ने जीवन भर की विनयशीलता और शिष्टता एकत्र कर डालनी चाही। आखिर ससुर साहब जो ठहरे।

"आप के ही दर्शन करने आया हूँ।" डाढ़ी ने कहा।

"सब से बड़ा सौभाग्य है कि आप के पवित्र चरण यहाँ पधारे। यहाँ तक आने में आपने जो कष्ट उठाया, उसके लिए कृतज्ञ हूँ।" रतन ने उत्तर दिया।

"कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। बल्कि आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई है।"

"और आप?" रतन ने बात का सिलसिला महिला की ओर झुकाया।

"हाँ, यह भी चली आई।" डाढ़ी हँस कर बोली। रतन बाबू ने साहस बटोर कर महिला से ही बातों का सिलसिला जारी रखना चाहा। बूढ़े के ऊपर असर डालने से तो यही अच्छा है कि लड़की पर ही असर डाला जाय। बात-चीत के बहाने अपनी भावी पत्नी की सूरत-शकल देखने और उसकी शहद-भीगी आवाज़ सुनने के लिए वह चंचल हो उठे।

"आपने तो व्यर्थ ही कष्ट किया।" रतन ने महिला को सम्बो-न करते हुए कहा। और उसकी मधुर कण्ठ-ध्वनि सुनने की आशा में कान चौकन्ने कर लिये।

"हाँ, आप तो ·····खैर सैर हो जायगी।" मोहन बोला।

"नहीं बेटा, मुझे यहाँ आने में कोई दिक्कत नहीं हुई।" कह

कर महिला ने रतन की ओर मुँह कर लिया। 'बेटा' शब्द सुनते ही रतन सन्न रह गये। वह तो प्रियतमा की आशा लगाये बैठे थे, और यहाँ निकलीं माता जी! रतन मुस्काकर उस सुन्दर मुख को निहारना चाह रहे थे, जिस की आशा उन्होंने कर रखी थी! बुढ़िया शायद डाढ़ी की धर्मपत्नी थी। अपनी लड़की के लिए वर तलाश करने आई थी। डाढ़ी ने मतलब की बात का सिलसिला शुरू किया।

"यह तो आप को मालूम ही होगा कि मैंने आप को किस लिए कष्ट दिया है।" डाढ़ी बोली।

"जी हाँ, आप की कृपा है।" रतन ने कहा।

"मैं कुछ पूछना चाहूँगा। आप कृपा करके साफ़-साफ़ बता दें। पहले ही एक-दूसरे के बारे में सब-कुछ जान लेना अच्छा रहता है।"

"इसमें क्या शक है। और जब इन का और आपका सम्बन्ध हो गया तो छिपाना क्या।" मोहन ने कहा।

इसके बाद डाढ़ी ने अपने टेढ़े-तिरछे दाँत चमकाते, कुछ मुस्काते, कुछ गम्भीरता दिखाते हुए कितने ही प्रश्न कर डाले। किसी का उत्तर मोहन और किसी का रतन ने बड़ी भलमनसाहत और खूबी से दे दिया। माता-पिता, घर-मकान, भाई-बहन सब की बाबत उस चालाक बूढ़े ने रतन बाबू से पूछ डाला।

"आपकी आयु क्या होगी?" डाढ़ी ने पूछा।

"३० वर्ष की?" रतन प्रश्नों का उत्तर देते-देते घबरा गये। उनकी आवाज़ में कुछ कम्पन भी पैदा हो गई।

"३० वर्ष? ठीक! पर आपका जन्म किस सन् में हुआ था?" डाढ़ी ने सी० आई० डी० की तरह एक ही प्रश्न को दूसरी तरह

फिर रखा। रतन घबरा भी गये और क्रोध में भी आ गये।

"आप किस तरह के प्रश्न करते हैं?" इसका उत्तर तो मै दे चुका। मेरी कोई गिरफ़ारी है जो सी० आई० डी० की तरह आप मुझे उलझाना चाह रहे हैं।" रतन की वाणी में क्रोध काँप उठा और उनकी यह अवस्था देखकर वह मक्कार डाढ़ी हँस पड़ी।

"लल्ला! बताने में हर्ज क्या है?" बुढ़िया ने रतन के रोष को कम करना चाहा।

"सो तो ठीक है माता जी! हाँ, आपका प्रश्न क्या है?" मोहन ने पूछा।

"आपका जन्म कब हुआ है?" डाढ़ी प्रश्न को दोहरा गई।

"अब सन् ४४ है, इसमें से ३० घटा दीजिए। इतना हिसाब तो, मेरे खयाल में, आप जानते ही होंगे। माफ़ करें।"

मोहन ने डाढ़ी पर व्यंग्य की चोट की और इधर रतन भी प्रश्नों के उत्तर तपाक से देने के लिए तैयार हो गये।

"एक प्रश्न और पूछूँ?" डाढ़ी बोली।

"हाँ, बड़े शौक से।" रतन ने सँभल कर कहा।

"आप करते क्या हैं?"

"कविता!" रतन ने तुरन्त उत्तर दिया।

"कविता!" बुढ़िया आश्चर्य से बोली।

"कविता!" डाढ़ी हँसते हुए बोली। रतन और मोहन दोनों को अपनी ग़लती मालूम हुई। रतन को अपनी नासमझी पर इतनी झेंप चढ़ी कि वह पसीना-पसीना हो गये। वह फिर सँभले। और मोहन ने फिर बात बनाने के लिए कहा, "आपका मतलब शायद रतन बाबू समझे नहीं।"

"मेरा मतलब है, आप क्या व्यवसाय करते हैं ?" डाढ़ी ने प्रश्न को स्पष्ट किया।

"ओह ! मैं ······ मैं तो आजकल······" रतन ने बात फिर भी पूरी न की। वह डरे कि क्या बताएँ, कुछ करते-धरते वह थे नहीं आजकल। मोहन उनकी घबराहट समझ गया। उसने बिगड़ती बात सँभाली। वह बोला, "अभी कल तक एक फ़र्म में ऊँचे पद पर कार्य करते रहे हैं। आप को काम पसन्द न था। फ़र्म वालों ने आपके पैर तक पकड़े और तनखा दुगनी तक करने का वायदा किया पर आप न माने। अब आप वायसराय के दफ़्तर में काम करने का इरादा कर रहे हैं।"

"आपको इतना समझाया और आप माने नहीं। तब तो आप बड़े हठी हैं।" डाढ़ी ने चुटीली मुस्कान के साथ कहा।

"हठी-वठी कुछ नहीं। अपनी-अपनी इच्छा। आप यहाँ मेरे चरित्र की आलोचना करने आये हैं या 'इण्टरव्यू' करने। इन बातों से तो आप अपने हाथ से मुझे खो देंगे। आपका मतलब क्या है।" रतन की वाणी में क्रोध स्पष्ट प्रकट हो गया।

"बेटा, विवाह-शादी के मामले में सभी बातें जान लेना ठीक रहता है। अपनी लड़की योंही तो किसी के हवाले नहीं की जाती।" बुढ़िया ने रतन की बात का उत्तर दिया।

"ठीक है माता जी, आपको पूरी-पूरी तसल्ली कर लेनी चाहिए।" मोहन ने बीच में पड़ कर दोनों को फिर शान्त चित्त होकर बातें करने का प्रोत्साहन दिया।

"अपनी लड़की देते समय यही सब देखा जाता है कि लड़का क्रोधी न हो, स्वभाव और चालचलन का अच्छा हो। कमाऊ हो। खानदान का ठीक हो !" बुढ़िया ने और भी विवेचना कर डाली।

"तो इसका मतलब यह है कि मै अयोग्य हूँ, बेकार हूँ, क्रोधी हूँ।" रतन ने उसी स्वर में कहा।

"उनका यह मतलब नहीं है।" मोहन ने फिर संकेतमयी भाषा से रतन को शान्त होने के लिए कहा; पर उनकी समझ मे ही न आया।

"यह तो मैं नहीं कहती। पर सब-कुछ देखा तो जाता है।" बुढ़िया बोली।

"माफ़ करें बाबू जी, क्रोध तो आप को अब भी आ रहा है।" डाढ़ी ने रतन को उनकी सच्ची अवस्था का ज्ञान करा दिया। रतन और भी बुरा मान गये।

"अच्छी बात है मैं क्रोधी सही, निकम्मा सही। आपकी कृपा है, आपके ऐसा सोचने पर आप को धन्यवाद। मैं कोई योंही नहीं हूँ—न जाने कितने बड़े-बड़े आदमी अपनी लड़कियों के सम्बन्ध मुझ से करना चाहते हैं। मैं तो चाहता था कि आप के यहाँ हो जाता तो अच्छा था। आप भले आदमी मालूम होते हैं।" रतन आत्म-गौरव प्रकट करते हुए बोले।

"आप नाराज़ न हों। विवाह के मामले में लड़की वाला अपनी तसल्ली करने के लिए कितनी ही बातें जानना चाहा करता है।" डाढ़ी ने कहा और अब भी उस लोमड़ी की दुम को हँसी सूझ रही थी।

"बेटा, सन्तान माँ-बाप की आत्मा है। वे तो अपनी सन्तान को हर तरह से सुखी देखना चाहते हैं। परमात्मा तुम्हें राजी रखे।" बुढ़िया ने कहा।

"अब तो माता जी आप की तसल्ली हो गई। मैं तो यही कह सकता हूँ कि लड़की यहाँ आकर स्वर्ग का सुख भोगेगी। आपकी

दया से यहाँ किसी चीज़ की कमी नहीं।" मोहन बोला।

"इसमें हमें ज़रा भी शक नहीं। अच्छा, आप को बड़ा कष्ट हुआ। हम चलते हैं।" कहकर डाढ़ी और उस की बुढ़िया दोनों उठ गये। रतन तथा मोहन उन को थोड़ी दूर तक पहुँचा आये। रतन को विश्वास हो गया था कि औरत तो बिल्कुल तैयार है और उसी की चलेगी। लड़की पर माँ का ही हक़ ज्यादा होता है। लेकिन आज तक रतन का विवाह उस की लड़की से तो न हुआ।

———

लाट साहब की विदाई

आज भारत के वायसराय लिनलिथगो यहाँ से विदा ले रहे हैं। लाट साहब भारत के साँडों को दिल के कोने-कोने से प्यार करते रहे हैं। इसीलिए आपको विदा देने के लिए बम्बई के खास बन्दरगाह के एक मैदान में हिन्दुस्तान के कोने-कोने से साँडों के समूहों का समुद्र उमड़ पड़ा है। साँडों का इतना भीड़-भक्कड़ जमा हुआ है कि उनके लिए भूसा धरने को तिल भर भी जगह न रही। इस भीड़-भक्कड़ में हर प्रकार के साँडों ने शरीक होकर अपने घायल दिल की दर्द-भरी दास्तान सुनाने का, जख्मी जिगर के रिस-रिस कर बहने वाले नासूरों को दिखाने का, अपनी-अपनी वियोग-ज्वाला की जलन को प्रकट करने का सुनहरा मौका पा लिया है।

इस साँड-सभा में सभी प्रकार के साँड शरीक हुए। सुन्दर-सजीले साँड, गर्वीले-शर्मीले साँड, रसीले-लजीले साँड, भड़कीले चमकीले साँड, हठीले-छबीले साँड, चटकीले-मटकीले साँड सभी प्रकार के साँड शान से सुशोभित थे। इस मजलिसे-साँड में

आप साँड की हर एक किस्म की कतारें देख सकते थे। गोरे-पीले नीले साँड, धौले काले लाल साँड, बूढ़े और जवान साँड, दुर्बल-पहलवान साँड, सुकुमार-कुमार साँड, निर्दय और दयाल साँड, नरम-अकड़दार साँड --अपनी-अपनी जुगाली छोड़, मुँह ऊपर उठा, पूँछ खड़ी कर मैदान में जमा थे।

कहने के लिए बात बहुत लम्बी-चौड़ी है और लिखने के लिए लिस्ट द्रौपदी का चीर बन जायगी। इसलिए ज्यादा न लिख कर मतलब की बात ही कहनी ठीक होगी। यानी उस मैदान में— जितनी किस्म के या जितने रङ्ग के, जितने तौर-तरीकों के या जितनी तबीयतों के साँड भारतवर्ष में पाये जाते हैं और जिनको लाट साहब की मुहब्बत का कुछ भी चस्का लग चुका था - सभी प्रकार के साँड लाट साहब को अन्तिम विदा देने के लिए इकट्ठे हुए थे।

सुबह के नौ बजे लाट साहब के आने का वक्त सरकारी तौर पर ऐलान किया जा चुका था। टन्न ......बन्दरगाह के क्लाक-टावर से आठ के ऊपर अद्धे की आवाज़ मैदान में गूँज उठी और सारे साँड एकदम चौकन्ने हो गये। अभी तो आध घण्टा है लाट साहब के आने में लेकिन आध घण्टा बाद लाट साहब हम सब से नाता तोड़ कर बाहर चले जायँगे। ओह ! प्रेम तेरा बुरा हो ! परदेशी की प्रीति जैसे रेत की दीवार या शाम के सूरज की लाल किरण या हवा का एक झोंका ! उसका क्या यकीन ! इसी प्रकार के विचार साँडों को सताने लगे।

लाट साहब के आने का वक्त हो गया। आध घण्टा किसी न किसी प्रकार साँडों ने सैकड़ों युगों की तरह काटा। टन्न...टन्न टन्न . इस प्रकार नौ बजने लगे। तमाम भीड़ पर उदासी छा गई।

"आह ! आज लिनलिथगो की विदाई है । आज का दिन भी आना था ! हाय, इनके बिना तो हमारे लिए यह संसार सूना हो जायगा । हाय लिनलिथगो तुम्हारे प्यारे साँडों का जीना अब असम्भव है । ये दिल पर काबू कैसे करेंगे । अरे, ये तो आहों की आग में खुद ही जल कर राख हो जायँगे ! साँड मुहब्बत करके उसका टूटना नहीं सह सकता । आह ! लिनलिथगो !" एक साँड ने सर्द साँसें लेते हुए कहा और सब ओर सन्नाटा छा गया ।

साँडों ने सामने जो देखा तो लाट साहब आते हुए मालूम हुए । हल्के-हल्के मुस्कराते, उदासी बिखराते, स्नेही साँडों को शोक-सागर में डुबाते लाट साहब साँडों के बीच में आये । चारों तरफ़ बेबसी भरा सन्नाटा छा गया । साँडों की आहों से आसमान काँपने लगा । उनके दिलों की धड़कन से धक-धक की होने वाली आवाज़ें साफ़ सुनाई पड़ने लगीं । सारा साँड-समूह काँप उठा । शीघ्र ही होने वाले वियोग का दुखदाई रूप उनके सामने दाँत निकाल कर खड़ा हो गया । साँडों ने भीगी आँखों से लाट साहब की तरफ़ देखा । उनकी पुतलियों में मौन विवशता, वियोग-संताप, अपूर्ण अरमान, दिली अनुरोध साफ़-साफ़ दिखाई दिया ।

लाट साहब को विदा देने के लिए उनके साथ सरकारी अफ़सर भी थे । उनको लाट साहब ने इशारा किया, वे लोग एक तरफ़ खड़े हो गए । लाट साहब, साँडों के बीच में बने हुए, एक ऊँचे-से चबूतरे पर खड़े हो गये । उनके खड़े होते ही एक सरकारी अफ़सर आगे बढ़ा और उसने ऐलान किया कि सब साँड भाई ध्यान लगा कर सुनें, लाट साहब अपने दिल की मुहब्बत की छोटी-सी तस्वीर आपके सामने रखेंगे ! ऐलान करके अफ़सर बैठ गया । सब ओर बिल्कुल खामोशी छा गई ।

लाट साहब ने कहना शुरू किया—"मेरे प्यारे साँडो, तुम मेरे दिल और दिमाग़ के मालिक हो। मेरी मुहब्बत की दुनिया के रखवालो, आज मैं तुमसे विदा ले रहा हूँ। मेरे कलेजे में जो हलचल मच रही है, वह तुम्हारे प्रेम का एक सबूत है। कलेजा चाक-चाक हुआ जाता है। दिल के टुकड़े हो गये हैं। आह! तुम्हारा वियोग हृदय को छलनी बनाए डाल रहा है। उफ़! तुम्हारे बिना रातें और मेरे दिन कैसे कटेंगे? उफ़! मेरे प्यारे साँडो! मैं मजबूर हूँ! वरना तुमसे जुदा होते हुए, जो हालत मेरी हो रही है, मैं ही जानता हूँ।"

लाट साहब का इतना कहना था कि सभी साँड ठण्डी आहें भरने लगे। कितने ही साँडों के सामने अँधेरा छा गया, कितने ही साँडों को चक्कर आ गया, अनेक साँड गर्दन नीची करके चौंकने लगे। साँड-सभा तिलमिला उठी! साँड-समूह छटपटा उठा! सभी की आँखों से आँसुओं की नदियाँ बहने लगीं! चारों तरफ़ साँडों की सिसकियाँ ही सिसकियाँ सुनाई देने लगीं। बहुत देर तक इसी प्रकार की दशा रही। सब के गले भर आये। कोशिश करने पर भी कुछ देर तक न लिनलिथगो और न साँड ही, कुछ भी बोल सके।

थोड़ी देर के बाद लाट साहब ने दिल पर काबू किया। साँड भी कुछ-कुछ अपनी असली हालत में आये, उनकी भी आहें कम हुईं, आँसू कुछ रुके और दिल की धड़कन ज़रा ठिकाने आई! लाट साहब ने उनको धीरज देना शुरू किया—"मेरे प्यारे साँडो, मेरी आँखों के तुम नज़ारे हो। मेरी पलकों के तुम्हीं मीठे सपने हो। मेरी काली-काली बरसाती रातों के तुम ही धीरज हो! मेरे साँडो धीरज धरो। मिलन-विछोह तो संसार का अटल नियम

है। परमात्मा ने इसी नियम में हमें भी बाँध दिया है।"

लाट साहब की बात अभी पूरी न होने पाई थी कि एक साँड सिसकियाँ लेता, टपाटप आँसु गिराता लाट साहब के पास आया और भरे हुए गले से गद्‌गद्‌ शब्द निकालता हुआ बोला—"आज तुम धीरज धरने की बात कह रहे हो ? हाय ! इस दिल से तुम धीरज धरने की बात कह रहे हो ! यह नाजुक दिल तुम्हारी जुदाई कैसे सहेगा ! ये भोले-भाले साँड धीरज की बात क्या जानें। अरे, इनको प्रेम करना आता है। ये सारे के सारे साँड तुम्हारे वियोग मे तड़प-तड़प कर जानें दे डालेंगे। न घास चरेंगे, न चारा खायेंगे ये सरल हृदय साँड वियोग-ज्वाला में जल मरेंगे। हाय लिनलिथगो।"

"प्यारे तुम जा रहे हो—हमें इस प्रकार तड़पता छोड़ कर तुम जा रहे हो ? अपने प्यारे साँडों को इस प्रकार छटपटाते छोड़कर, कलेजा पत्थर का बना कर, तुम तो जा रहे हो और इधर हम सब प्राण दिये डालते हैं। आह ! जब याद आयेगी वे बरसाती रातें, जब तुम चारा डालने के बहाने अन्दर आ जाया करते थे और प्यार की दो-दो बातें करके दिल को धीरज दिया करते थे, तो हम कैसे जियेंगे।" कहते-कहते साँडराज का गला भर आया। शब्द मुँह से निकलने कठिन हो गये। वह सिसक-सिसक कर रोने लगा।

लाट साहब साँडराज की यह करुण दशा देखकर व्यथित हो उठे। उन्होंने प्यार से साँडराज को गले से लगा लिया। साँडराज भावी वियोग की आशंका में उनके कलेजे से ऐसा चिपट गया कि छूटने का नाम न लिया। उसके प्रेम-भाव को देखकर सभी साँड नयनों से नीर बहाने लगे। साँडराज को लाट साहब ने कलेजे से हटा कर समझाना चाहा तो वह और भी उनसे चिपट गया। उस

की इस हरकत को देखकर पुलिस के दो-चार अफ़सरों ने लाल आँखें कर अपने डण्डों पर हाथ रखे ही थे कि लाट साहब ताड़ गये और उनको आँख के इशारे से शान्त रहने का आदेश दिया। बेचारे मन मार अपना जोश दिल ही में दबा कर रह गये।

३-४ मिनट तक साँडराज लिनलिथगो की छाती से चिपटा रहा और लाट साहब उस की कमर पर प्यार का हाथ फेरते रहे। थोड़ी देर में साँडराज को कुछ सुध आई और उसका कलेजा ठण्डा हुआ। लिनलिथगो की आँखें भी भीग गईं और वह भी साँडराज का वियोग-शोक अनुभव करके बोले—"दिल को मजबूत करो साँडराज। मन को इतना कमज़ोर न बना दो। जिन्दगी में दुख-सुख, मिलन-वियोग का साथ है। यह वियोग कभी सोचा भी न था। वरना काहे को इतना प्यार बढ़ाया होता। क्या तुम नहीं देख रहे, मेरे दिल की हालत भी कैसी हो रही है। पर दिल को कड़ा करके सब-कुछ सहना ही पड़ेगा।"

इतने ही में दूसरा साँड धाड़ मार कर रो पड़ा। अकुलाता-पछताता, नयनों से नीर बहाता, वह लगा कहने—

विरह की कैसे बिथा सहे?
उमड़-उमड़ सब के मन आवैं,
नीर नयन निसिदिन बरसावैं,
तुमरे बिन रो-रो मर जावैं,
पानी पियें न चारा खावैं,
मरण का हम सब पंथ गहैं।
विरह की कैसे बिथा सहैं।
छोड़ हमें ले चले विदाई,
निष्ठुर तुम को दया न आई,

ये ही तुम ने प्रीत निभाई,
नयी प्रीत की रीति दिखाई।
कब तक आग दबाय रहैं।
विरह की कैसे बिथा सहैं।
परदेसी की प्रीत बुरी है,
अरे, प्रीत की रीति बुरी है।
अपनी इसमें हार बुरी है,
लिनलिथगो की जीत बुरी है।
साँड सब कैसे विरह सहैं।
विरह की कैसे बिथा सहैं।

सचमुच छोड़ चले जाओगे,
सूरत कभी न दिखलाओगे,
इसी तरह क्या तरसाओगे,
आग विरह की दहकाओगे ?
जिगर का किस से दर्द कहैं ?
विरह की कैसे बिथा सहैं ?

प्रेम के आँसुओं से तर, विरह की आग में झुलसी हुई सच्ची मुहब्बत के मुरब्बे-सी मीठी, निराशा की तानाजनी से सूखी हुई, साँड सरदार की तड़पती हुई कविता सुन कर लिनलिथगो का हृदय आँसुओं में बह निकला। वह आँसू पोंछते, दिल मसोसते, आने की बात दिमाग़ में सोचते हुए बोले—"आह! मैं आज समझा हूँ कि हिन्दुस्तानी साँडों के दिल में लिनलिथगो के लिए कितनी सच्ची मुहब्बत है। कई बार सुना है कि साँड किसी के सगे नहीं, लेकिन भारतीय साँडों ने यह बात झूठ साबित कर दी है। सचमुच मेरा सौभाग्य है कि आप लोगों से मुझे प्रेम करने का मौक़ा

नसीब हुआ ।"

"हाय, इसी प्रेम का यह नतीजा है कि आज अपने हज़ारों प्रेमियों को आँसुओं के समुद्र में डूबता-उतराता छोड़कर लिन-लिथगो की बिदाई हो रही है। ओह ! प्रिय लिनलिथगो अगर तुमने हमारी मुहब्बत की ज़रा भी कीमत लगाई होती। तुमने कब समझी है हमारी बिथा-भरी कहानी।" एक साँड ने सिसक-सिसक कर अपनी विरह कहानी कही।

"मैं तुम्हारी मुहब्बत की क़सम खाकर कहता हूँ, मेरे दिल में जो तूफ़ान उठ रहा है, उसे मैं ही जानता हूँ। लेकिन मजबूरी है। देखो, उधर जहाज़ भी तैयार हो चुका है। चलो, तुम भी किनारे तक चलो।" लिनलिथगो ने प्यार-भरी वाणी में कहा।

लाट साहब मंच पर से नीचे उतरे तो सैकड़ों साँड उन को घेर कर खड़े हो गये और मचल-मचल कर लगे विनय-अनुरोध करने। अनेक ने प्यार का अधिकार जताते हुए कहा—हम तो हरगिज़-हरगिज़ न जाने देंगे। कितनों ही ने कहा—हम तुम्हारे बिना जान दे देंगे। कितनी ही आवाज़ें रम्भा-रम्भा कर आसमान सिर पर उठाने लगीं। कई साँड तो गिरते-गिरते बचे। लिन-लिथगो ने उन को चुमकार-पुचकार कर समझाया और अपने लिए भीड़ में रास्ता बनाया।

लाट साहब आगे-आगे चल दिये। उनके आस-पास अगल बगल सरकारी साँड थे और उनके इधर-उधर देशी साँड भीड़ की भीड़ बनाकर चल रहे थे। भीड़ की भीड़ लिनलिथगो के साथ रोती सिसकती आहें भरती बन्दरगाह की तरफ़ चल दी। दस कदम भी न पहुँचे होंगे कि पूँछ उठाये, कान खड़े किये, रम्भाता-चिल्लाता एक साँड भागा-भागा आया और लिनलिथगो के सामने

आते ही दहाड़ मार कर रो पड़ा।

वह चिल्लाया..."न जाओ। मेरे प्राण न जाओ, हमें यों छोड़ कर न जाओ।"

इतना कह कर अपने अगले पैर उठा, लाट साहब को गलबहियाँ डाल, उनको हृदय से लगा लिया। अपना मुँह उनके कन्धे पर रख कर हिडक-हिडक और सिसक-सिसक कर रोने लगा और लगा कहने—"न जाओ! निष्ठुर न जाओ! अगर यह नाता तोड़कर, मुहब्बत से मुँह मोड़कर ही जाना था तो हमें अपने प्रेम-जाल में ही क्यों फँसाया था। हमने भी बहुत-सी प्रेम-कहानियाँ पढ़ी-सुनी हैं। सब में प्रेमी-प्रेमिका बहुत दिन बिछोह का दुख सह कर मिलन का आनन्द लेते हैं। और हमारी प्रेम-कहानी बिल्कुल उल्टी है—मिलन का थोड़ा-सा सुख लेकर जीवन भर वियोग के दुख में मछली की तरह छटपटाना पड़ेगा! हाय प्राण! हाय लिनलिथगो!"

इस साँड की विकलता वियोग-पीड़ा देख लाट साहब की आँखों से आँसुओं का पहाड़ी झरना बहने लगा—"साँड सनेही, हमारी तुम्हारी मुहब्बत की मिसाल संसार के इतिहास में बेजोड़ रहेगी। दुनिया देखेगी कि लिनलिथगो ने भारतीय साँडों से प्रेम किया था। आज का यह नज़ारा बिछड़ते हुए प्रेमिकों को सहारा देगा। दुनिया देखेगी कि साँड और लिनलिथगो बिछड़ते हुए कैसे फूट-फूट कर रोये थे। मेरी भी आँसुओं की धार रोके से नहीं रुक पा रही है। मेरे बस में हो तो मैं अपना तमाम जीवन तुम्हारे प्रेम में गुज़ार दूँ। वक्त हुआ जा रहा है। साँड, धीरज धरो। कलेजा कड़ा करो।"

जाने का नाम सुनकर वह और भी चिपट गया। थोड़ी देर के

लिए दोनों को अपने तन-बदन की सुध न रही। उधर घण्टी बज गई कि जहाज़ तैयार हो गया है। बड़ी कठिनता से साँड को मनाया। उसे हृदय से अलग किया। वह अलग ही न होता था। खैर किसी प्रकार साँड सरदार ने उसे अलग किया और आँसू पोंछते हुए लाट साहब जहाज़ के पास आ गये। ज्योंही जहाज़ पर चढ़ने लगे कि सारे साँड हाहाकार कर उठे। चारों ओर करुण-चीत्कार मच गया।

लाट साहब केबिन पर खड़े होकर उन को धीरज देने लगे। ज्योंही जहाज़ धीरे-धीरे समुद्र की ओर बढ़ा कि सब साँड धीरज खो बैठे। जो बहादुर साँड दिल थामे खड़े थे, वे भी रो पड़े। वियोग की यह मार! जहाज़ बन्दरगाह छोड़ने लगा। साँडों की हिड़की बँध गई। सब की बहुत करुणाजनक दशा थी। वियोग का ऐसा रुलाने वाला नज़ारा आज तक न किसी ने देखा था, न कोई देखेगा। क्योंकि विलायती लिनलिथगो का आगमन न फिर भारत में होगा, न साँड लोग प्रेम के चक्कर में आयेंगे, न उनको प्रेम करके इस प्रकार पछताना पड़ेगा।

साँडों की रुदन-अवस्था देखकर पुलिस वालों का कलेजा भी पसीज गया। उन्होंने देखा—कोई साँड पछाड़ें खा-खाकर गिर रहा है, तो कोई अगले खुरों से अपना सिर धुने डाल रहा है। कोई साँड रम्भा-रम्भा कर आसमान कँपाए डाल रहा है, तो कोई कहीं पड़ा सिसकियाँ भर रहा है तो कोई अपनी पूँछ से आँसू पोंछ-पोंछ कर भी आँसुओं में डूबा जा रहा है। कोई बेतरह परेशान होकर ऊपर-नीचे साँसें ले रहा है, तो कोई दम साधे पड़ा है। कोई अपनी जान दिये डालता है, तो कोई अपना सिर ज़मीन से टकरा-टकरा कर उसे फोड़े डाल रहा है। सरकारी अफ़सर

जब उनको चुमकारते-पुचकारते तो वे सींगों से बुरी तरह मारने दौड़ते, पुलिस वाले रोब दिखाते तो साँड साँय-साँय कर उनके पीछे हो जाते।

साँडों के नयनों से बरसाती मूसलाधार की तरह आँसुओं की झड़ी लगी थी। बन्दरगाह पर कीचड़ ही कीचड़ हुई जा रही थी। उनके नयनों से इतनी अश्रुधारा बह चली थी कि बाढ़-सी आ गई थी, फिर भी वे वियोग-वह्नि में जले जा रहे थे। उनके करुणा-क्रन्दन से बम्बई का बन्दरगाह प्रतिध्वनित हो रहा था। उनकी रोदन-राग से समुद्र-तट का कलेजा भी काँप जाता था। इधर इन प्रेमियों की दयनीय अवस्था थी और उधर लिनलिथगो का जहाज़ उनके मैके की ओर चला जा रहा था।